रवीन्द्र-साहित्य

ग्यारहवाँ भाग

अभिलाष

मुक्त चैतन्य

न्याय-दण्ड

कच और देवयानी

काव्य

डाकघर

नन्दिनी

नाटक

धन्यकुमार जैन

प्रकाशक
धन्यकुमार जैन
हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७

मूल्य २।) सवा दो रुपया

मुद्रक—निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस
१२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता

रवीन्द्र-साहित्य

ग्यारहवाँ भाग

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

पद्यानुवादक

श्यामसुन्दर खत्री

हिन्दी-ग्रन्थागार

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता - ७

सूची

भाग १ से १२ तककी
अकरादिक्रमिक सूची
अन्तमें देखिये

अभिलाष

उच्चाभिलाष ! जन-मन-विमुग्धकर हो तुम,
तव राह अशेष-अपार उतरती-चढ़ती।
की जायँ पान्थशालाएँ जितनी भी तय,
आगे बढ़नेकी उतनी इच्छा बढ़ती। १

तव वंशी-स्वरसे मुग्ध-प्राण हो मानव,
उस मंजुल स्वरके, हाय, लक्ष्यपर केवल
जितना ही बढ़ते जाते हैं उतना ही
यह समझ न पाते, वंशी बजती किस थल ! २

चल पड़े, देख, मानव मोहित होकर,
गिरिके उन्नत शिखरोंका कर उल्लंघन,
कर तुच्छ सागरोंकी भीषण लहरोंको,
सहकर मरु-पथके क्लेशोंको निर्भय मन। ३

हिम-क्षेत्र, विजन वन, बीहड़ कानन प्रान्तर
कर अतिक्रमण बाधाएँ, बढ़ता जाता।
पर गन्तव्य-स्थल कहीं न ढूंढ़े मिलता,
किस थल वंशी बजती, यह समझ न पाता। ४

वह लखो, एक दल मानव दौड़ पड़ा है,
सुख्याति लोक-वन-पथमें क्रय करनेको ;
राक्षसी क्षेत्रमें मृत्यु - मूर्तिमें भीषण
यम-द्वार सदृश इच्छाका मुँह भरनेको। ५

वह लखो, बैठ ग्रन्थोंकी प्राचीरोंमें
कुछ अन्य रात-दिन स्वास्थ्य किया करते व्यय,
सोपान बना ली है लेखनी उन्होंने
तव द्वार तलक हो पहुँच, यही है आशय। ६

रे दुरभिलाष! है अन्त तुम्हारा किस थल,
'क्या स्वर्ण-सौधमें?' नहीं, सत्य यह क्योंकर?
'क्या सोनेकी खानोंमें?' यह भी मिथ्या,
है अन्त तुम्हारा यमके दरवाजेपर। ७

अभिलाष, दुष्ट! तव पथमें दौड़ पड़े हैं
सन्तोष प्राप्त करनेको जगके मानव।
वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं वे,
सन्तोष नहीं रहता कदापि पथमें तव! ८

वे नहीं जानते, हाय, उन्हें न विदित है,
दीनोंकी कुटियोंमें सन्तोष विराजित,
सन्तोष तपोवन - मध्य रहा करता है,
सन्तोष धर्मके पुण्य-द्वारपर शोभित। ९

वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं वे,
तव ऊँचे-नीचे कुटिल मार्गमें आकर
सन्तोष न आसन कभी बिछा सकता है।
तमपूर्ण नरकमें जाते कभी न रवि-कर। १०

मानव अबोध केवल सुखकी आशासे
हैं दौड़ लगाते रह-रहकर तव पथपर;
वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं वे,
सुख नहीं देखता उनको आँख उठाकर। ११

सन्देह भावना चिन्ता अघ आशंका
तव पथमें केवल ये ही बिछे पड़े हैं;
क्या हो सकते हैं ये सुखके सिंहासन!
इन जंजालोंमें सुखके पग जकड़े हैं? १२

वे नहीं जानते, नहीं जानते हैं यह,
निर्बोध मानवोंको यह बात न सुविदित,
चिर पूत धर्मके द्वार बिछा निज आसन
है वहाँ चिरस्थायी सुख सदा अवस्थित। १३

वह लखो, मानवोंका दल दौड़ पड़ा है
तव पथमें, हे दुष्टाभिलाष, आतुर हो,
अनुताप शोक हत्याको ढोकर सिरपर
वह दौड़ पड़ा तव पथमें संशय-उर हो। १४

छल-छन्द धूर्तता अत्याचार-निचयको
पथका सम्बल कर द्रुतगतिसे धाते हैं,
तव मोह-पाशमें फँसनेको, फन्देमें
ज्यों वंशी-ध्वनि-मोहित मृग फँस जाते हैं। १५

देखो, देखो, वह बोधहीन मानव-दल
होकर विमग्न तव मोहक वंशी-स्वरमें
औ' शुष्क तुम्हारी आशासे उत्तेजित
मुक्ता पानेको डूबा अघ-सागरमें। १६

अति घोर घाममें दीन कृषक करते हैं
कर्षण, निज तनुसे घर्म-सिक्त औ' निर्मल,
लिखते वे चारों ओर प्रसन्न हृदयसे
सम्पूर्ण वर्ष-व्यापी अपने श्रमका फल। १७

पद तव प्रलोभनों-मध्य, दुराकांक्षा हे,
वह दीन कृषकजन करते-करते कर्षण
तव पथ-शोभाका खींच मनोमय पटपर
मोहित उर करने लगा, हाय, चित्राङ्कन। १८

वह देखो, उसने निज उरमें की अंकित
अपनी शोभामय सौध-राजि सुमनोहर,
हीरे-माणिक-धन भरे कोष भी अपने
नाना शिल्पोंसे पूर्ण सुशोभन सुन्दर। १९

वन-कुञ्ज मनोहर सुखागार शिल्पोंकी
परिपाटी-युक्त प्रमोद-भवन मनभावन
गंगा-समीर-सुस्निग्ध ग्रामके कानन
परिपूर्ण प्रजासे वृहत् प्रदेश लुभावन। २०

सोचा क्षण-भरमें, अरे, कृषकने सोचा,
मानो उसका अधिकार हो गया सबपर;
यह गृह उसका, भण्डार उसीका है यह,
स्वामित्व उसीका इस प्रदेशपर सुन्दर। २१

क्षण-भरके ही पश्चात्, एक क्षणके ही
वे चित्र चित्तसे हुए विलुप्त, अरे रे,
वह चौंक उठा, सोचा, हाँ, उसने सोचा,
'क्या ऐसा सुख भी लिखा भाग्यमें मेरे?' २२

हम लोगोंकी, हा, सकल दुराकांक्षाएँ
क्षण-भरको मानस-मध्य उदय हो जातीं,
परिणत न कार्यमें हो पातीं, इतनेमें
उरकी छबि उरमें हो विलीन खो जाती। २३

वह लखो, एक दल मानव दौड़ पड़ा है
तव पथमें, उसके हाथ रक्तसे रंजित,
सिंहासन वैभव राज-दण्ड शासन औ'
राजत्व प्रभुत्व मुकुट औ' गौरवके हित । २४

वह लखो, गुप्त हत्याका भार वहन कर
जाता है पाँवोंके पंजोंके बलपर
चुपके - चुपके धीरेसे और अलक्षित,
देखो, जाता तलवार हाथमें लेकर । २५

सुखकी आशासे, वृथा सौख्य-आशासे,
निद्रित मनुजोंकी हत्या करता बढ़ - बढ़,
वह देखो, अपने शोणित - रंजित करमें
ले राज-दण्ड बैठा सिंहासनपर चढ़ । २६

पर लेशमात्र वह सौख्य कभी पा सकता ?
क्या कभी उसे सुख लगा गलेसे लेगा ?
क्या सौख्य बिछायेगा उसके उर आसन ?
क्या आँख उठाकर सुख उसको देखेगा ? २७

जिसने की है नर - हत्या सुखके पीछे,
सुखके ही पीछे धर्म पापमें माना,
जो सुखके पीछे वज्र-दृष्टि सह दौड़ा,
अपने अभीष्ट साधनको सब-कुछ जाना ! २८

यह कभी नहीं, यह कभी नहीं हो सकता,
पापोंका फल सुख भला कहीं हो सकता ?
क्या दण्ड पापका सुख आनन्द हुआ है ?
यह कभी नहीं, यह कभी नहीं हो सकता । २९

जलते अनुताप-हुताशनसे लगकर, हा,
निर्मल सुखका सुस्निग्ध समीरण सम्मुख
उत्तप्त हुताशनके समान हो जाता ;
फिर भला कभी अच्छा लगता ऐसा सुख ? ३०

जिसने सुखके पीछे नर - हत्या की है,
सुखके पीछे सद्धर्म पापको माना,
जो दौड़ा बाधा तोड़ इष्ट साधनको,
फिर उसे अन्तमें पड़ा सदा पछताना । ३१

अभिलाष, बैठकर उरके उच्चासनपर
मनुजोंको लेकर तुम हो खेला करते,
सोपान सिद्धिका करते सुलभ किसीको,
नराश्य - कवलमें निठुर किसीको भरते । ३२

कैकयी - हृदयमें पैठ, रामको तुमने
वनवास चतुर्दश वर्षोंका दिलवाया,
हर लिये प्राण दशरथके, हा, सीताको
तुमने अशोक-वनमें कितना कलपाया । ३३

रावणका था संसार सौख्यमय कैसा,
था कलश शान्तिका एक जहाँ संरक्षित,
वह फूट गया, हा, फूट गया वह सहसा,
उसके प्रधान कारण हो तुम्हीं अलक्षित । ३४

अधिकार चित्तपर करके दुर्योधनके,
हा, नाश अन्तमें उसका हो कर डाला,
वनवासी तुमने किया पाण्डु - पुत्रोंको,
धधका दी उनके उर क्रोधानल-ज्वाला । ३५

वध किया तुम्हींने भीष्म आदि वीरोंका,
कर दिया रक्तमय कुरुक्षेत्र रण - प्राङ्गण,
कम्पायमान सब प्रान्त किये भारतके,
दे दिया पाण्डवोंको सूना सिंहासन। ३६

कहता हूँ, हे अभिलाष, तुम्हारा वह पथ
पापोंसे पूरित, पापोंसे निर्मित है।
सोपान तुम्हारे भी तो कितने हो हैं,
उपकार-कलित कुछ, कुछ अपकार-जड़ित हैं। ३७

उच्चाभिलाष, यदि तुम न कभी निज पथको
विस्तारित करते इस पृथ्वी-मण्डलमें,
तो क्या उन्नति निज दिव्य ज्योतिकी आभा
विस्तारित कर सकती इस अवनीतलमें ? ३८

निज भिन्न अवस्थाओंमें यदि सब रहते
सन्तुष्ट, स्व-विद्या और बुद्धिके बलपर,
तो क्या उन्नति निज दिव्य ज्योतिकी आभा
विस्तारित कर पाती इस अवनीतलपर ? ३९

मुक्त चैतन्य

जिस दिन मेरा चैतन्य हुआ निज लुप्ति-गुहासे मुक्ति-प्राप्त
दारुण दुर्योगोंमें दुःसह विस्मय - झंझासे परिव्याप्त
ले आया है वह मुझको किस नरकानल गिरि-गह्वर-तटपर,
फुङ्कार रहा जो बार-बार उत्तप्त धूमसे गर्जन कर
मानवताका अपमान तीव्र, उसकी ध्वनि अशुभ अमंगलमय
कम्पित करती धरती, भरती कालिख वायुस्तरमें अतिशय।
अन्धा उन्माद आत्मघाती देखा आधुनिक कालका वह,
विद्रूप विकारका है कदर्य उसके सर्वाङ्गोंमें दुर्वह।
है एक ओर हुंकार निलज मदका निर्दयताका स्पर्धित,
है अपर ओर कायरताका पद-चारण द्विधाग्रस्त शंकित,
जिसको आलिङ्गित किये सबल
है कृपणोंका सतर्क सम्बल;
सन्त्रस्त प्राणियोंके समान क्षण - गर्जनके पश्चात तुरत
क्षीणस्वरमें है जता रही नम्रता निरापद मौन सतत।
वे प्रौढ़ प्रतापी मन्त्र-सभा-तलमें जो राष्ट्र-अधीश्वर हैं,
निज आदेशों - निर्देशोंको दाबे उनके ओष्ठाधर हैं
संशय-संकोच-विवश होकर। विक्षुब्ध शून्यमें एक ओर
वैतरणी नदी - पारसे ही निज यन्त्र-पक्ष हुङ्कार छोर
दल बाँध शकुनि नरमांस-क्षुधित दानव-पक्षी आते उड़कर,
करते अपवित्र गगनको हैं। हो महाकाल-सिंहासनपर
तुम महा-विचारक समासीन, दो मुझे शक्ति, दो मुझे शक्ति,
औ' भरो कण्ठमें वज्र-घोष, शिशु-घाती नर-घाती विरक्ति
कुत्सित बीभत्सापर वर्षा धिक्कारोंकी कर सकूँ, अमित
धिक्कार रहेगा जो स्पन्दित लज्जित ऐतिह्य-हृदयमें नित,
जब रुद्धकण्ठ शृंखलित भीत निःशब्द मौन होकर पलमें
यह युग होगा प्रच्छन्नपूर्ण छिप अपने चिता-भस्म-तलमें।

अभिशाप-ग्रस्त विदा

देवताओंके आदेशसे बृहस्पति-पुत्र कच संजीवनी-विद्या सीखनेके लिए दैत्य-गुरु शुक्राचार्यके पास आये थे। वहाँ वे एक हजार वर्ष रहे; और नृत्य-गीतादिसे शुक्र-दुहिता देवयानीका मनोरंजन करके सिद्धकाम होकर देवलोक लौट गये थे। यहाँसे विदा होते समय देवयानीके साथ कचकी जो बातचीत हुई, यह उसीका वर्णन है।

कच और देवयानी

कच— आज्ञा दो, हे देवयानी, देव-लोक यह दास
किया चाहता प्रयाण। आज गुरु-गृह - वास
हो गया समाप्त मेरा। विद्या को जो मैंने प्राप्त,
आशीर्वाद दो कि रहे वह चिरकाल व्याप्त
मेरे उर - अन्तरमें रत्न बन दीप्तिमान,
अक्षय किरण जैसे दिनकर तेजवान
मेरुके शिखरपर।

देवयानी— दुर्लभ विद्याका दान
आचार्यसे पाके हुआ मनोरथ फलवान।
सहस्र वर्षोंकी आज सिद्ध घोर साधना है;
किन्तु क्या न शेष और कोई अब कामना है?
मनमें विचार देखो।

कच— और कुछ चाह नहीं।

देवयानी— कुछ नहीं? एक बार फिर भी देखो तो सही,
हृदयके तल तक पैठके टटोलो, आह,
शायद छिपी हो किसी कोनेमें ही कोई चाह,
दृष्टिके जो ओझल हो कुशके अंकुर - सम,
चुभ रही हो तथापि अति पैनी तीक्ष्णतम।

कच— जीवन कृतार्थ आज। मुझमें नहीं है लेश

कोई दैन्य, तथा कोई शून्यता नहीं है शेष,
सुलक्षणे !

देवयानी— तीनों लोकमें हो तुम्हीं सुखी आज।
अस्तु, उच्च शीशपर गौरव - मुकुट साज
जाओ इन्द्रलोक निज कार्य-हेतु। स्वर्गधाम
हर्ष - ध्वनि - पूर्ण होगा, बजेंगे मनोभिराम
स्वरोंमें मंगल - शंख, देव - अंगनाएँ भव्य
शीशपै तुम्हारे बरसायेंगी सुमन नव्य
नन्दनकी सद्यःछिन्न मन्दार - मंजरी - चय।
अप्सरी - किन्नरी - कलकण्ठ - मञ्जु - गीतिमय
स्वर्ग - पथ होगा। हाय, विप्र, बहु क्लेश सह
तुमने हैं काटे दिन अध्ययन - रत रह
विजन विदेशमें। नहीं था कोई स्नेही जन
जो कि गेह-सुखकी दिलाके सुधि किसी क्षण
हरता प्रवास-कष्ट। दीनकी कुटी है यह,
यथासाध्य मिला जो उसीसे मैंने अहरह
अतिथिकी पूजा की है। किन्तु यहाँ स्वर्ग-सुख
कहाँ धरा ? यहाँ भला कहाँ आनन्दित मुख
सुर-ललनाओंके वे ? मेरी आशा, मेरी साध,
यही है कि भूल जाना आतिथ्यके अपराध,
पहुँचके सुरलोक।

कच— दासको स्वतःप्रवृत्त
देनी होगी आज विदा सहास्य प्रसन्न-चित्त

देवयानी— सहास्य प्रसन्न-चित्त ? हाय, सखे, यह नहीं
स्वर्गपुरी। मर्मोंमें तृष्णाएँ यहाँ जाग रहीं
पुष्प-कीट सम। यहाँ घूमती है घेरकर
वांछितको वांछा, जैसे लाञ्छित हो मधुकर

कमल - सम्पुटपर जाता लौट - लौटकर।
यहाँ स्मृति एकाकिनी, सुख - अवसानपर
शून्य गृह-मध्य बैठ लेती सदा दीर्घ श्वास।
सुलभ यहाँ न हास्य, करते क्यों काल नाश?
जाओ, बन्धु, उत्कण्ठित होंगे देवगण वहाँ।
जा रहे हो? दो शब्दोंमें सब शेष हुआ यहाँ?
यों ही क्या लो जाती विदा दश-शत वर्षपर?

कच— देवयानी, अपराध मेरा?

देवयानी— हाय, मनोहर
वन - भूमिने दी तुम्हें छाया सहस्राब्द-भर।
तुमको सुनाते रहे विहग कूजन-स्वर
पल्लव मर्मर-ध्वनि। त्याग इन्हें चले, हाय,
इतनी सरलतासे? आज मानो म्लान काय
हो रही है तरु-राजि। वनच्छाया बन गई,
देखो, आज शोकसे हो घोर अन्धकारमयी।
वायु रो रही है, शुष्क पत्र जा रहे हैं झरे,
और तुम जा रहे हो हँसी अधरोंमें भरे,
निशान्त-कालीन सुख-स्वप्न सम!

कच— देवयानी!
इस वन - भूमिको मैं मानता हूँ सुकल्याणी
मातृभूमि। यहीं मुझे हुआ नव-जन्म प्राप्त,
इसका अनादर करूँगा नहीं। चिर - व्याप्त
स्मृतिमें रहेगी यह चिरप्रीति-युक्त।

देवयानी— यही
वह वटवृक्ष-तल, जहाँ तुम प्रत्यह ही
गो-धन चराने आके सो जाते थे थककर,
तपती दुपहरीमें। तव क्लान्त देहपर

अतिथि-वत्सल तरु शीतल छाया छा देता,
सुखद सुषुप्ति अलसित दृगोंमें ला देता,
चंचल पल्लवोंसे व्यजन स्वरमय कर।
जाना, सखे! शेष बार बैठ तो लो क्षण-भर
परिचित तरु-तले। सुन तो लो सम्भाषण
इन स्नेह-छायाका भी। रुक जाओ दो ही क्षण।
इतने विलम्बसे हो जायगी न कोई क्षति
स्वर्गकी।

कच— ये बन्धु सभी चिरपरिचित अति
लगते नवीन मुझे विदाके क्षणोंमें अभी।
पलातक स्वजनको बाँध रखनेको सभी
बिछा रहे नूतन बन्धन-जाल; स्नेहमय
व्यग्रतासे कर रहे शेष बार अनुनय,
अपूर्व सौन्दर्य - राशि फैलाकर। वनस्पति!
आश्रित-वत्सले, नमस्कार मेरा तेरे प्रति।
कितने पथिक श्रान्त होंगे तव छायाश्रित।
कितने दिनों तलक कितने ही छात्र नित
मेरी भाँति आयेंगे औ' प्रच्छन्न नीरव शान्त
तव छाया-तले बिछा तृणासन अविश्रान्त
मधुप - गुञ्जनवत् करेंगे वे अध्ययन।
प्रातःस्नान कर यहाँ आके ऋषि - बालगण
सुखा देंगे गीले वल्कलोंको तेरी डालोंपर।
गोप - वृन्द खेलेंगे आ, होगी जब दुपहर।
विनती यही है, संग इनके, हे तरुवर,
यह पूर्व बन्धु रहे तव स्मृति - पटपर।

देवयानी— रखना स्मरण होम - धेनुको भी निरन्तर;
पुण्यमयी सुरभिको स्वर्ग - सुधा पान कर

भूलना न गर्वमें।

कच— सुधासे बढ़ सुधामय
दुग्ध उसका है। होता दर्शनसे पापक्षय।
मातृ-रूपा शान्ति-मूर्ति पयस्विनी शुभ्रकान्ति।
उसकी की सेवा मैंने त्याग क्षुधा तृष्णा श्रान्ति।
गहन वनोंमें शस्य - श्याम स्रोतस्विनी तीर
फिरता रहा हूँ संग उसके मैं धर धीर
अनुदिन। निम्न तट - भूमिपर परिव्याप्त
हरित मृदुल स्निग्ध तृणराशि अपर्याप्त
चरती थी यथातृप्ति ; फिर अलसाई हुई
चलती थी मन्द-मन्द नव छबि छाई हुई,
और किसी तरु तले छाया देख सुखकर
करती रोमन्थ बैठ जाती हरी दूबपर।
सकृतज्ञ बड़ी - बड़ी आँखें निज खोल वह
स्नेहवश मेरी ओर देख लेती रह - रह ;
अपनी कृतज्ञतासे पूर्ण शान्त दृष्टि द्वारा
वात्सल्यसे चाटती थी मानो मेरा तन सारा।
स्मरण रहेगी वह दृष्टि स्निग्ध अविचल
चिकनी सुपुष्ट शुभ्र भरी देह समुज्ज्वल।

देवयानी— कलकल-वती रेणुमतीको न भूल जाना।

कच— भूल जाऊँगा मैं उसे, भला यह कैसे माना ?
कितने ही कुसुमित कुञ्ज - पुञ्ज पार कर
आनन्दित मधुर गलेमें कल - गान भर
बहती है यहाँ सेवा - पगी ग्रामवधू सम
क्षिप्रगति शुभव्रता प्रवास - संगिनी मम।

देवयानी— हाय बन्धु, यहाँके प्रवास-कालमें क्या, कहो,
ऐसी भी तुम्हारी कोई सहचरी रहो, अहो,

विस्मृत करानेको जो परगृह - वास - क्लेश ?
दिन - रात रही है प्रयत्नशील सविशेष ?
हाय री दुराशा !

कच— नाम उसका तो पूर्णतया
सर्वदाके लिए मेरे जीवनसे गुंथ गया।

देवयानी— स्मरण है वह दिन जब आये गेह मम
ब्राह्मण किशोर- तुम तरुण अरुण सम,
तनु वह गौरकान्ति दीप्तिके साँचेमें ढाला,
चन्दन-चर्चित भाल, कण्ठमें थी पुष्पमाला,
पहने थे पट्टवस्त्र, आँखोंमें ओठोंमें बसी
खेलती थी मधुमय सरल प्रसन्न हँसी,
खड़े पुष्प - वनमें थे।

कच— तुम सद्यः स्नान कर
दीर्घ आर्द्र केश खोले, धारे शुभ्र शुक्लाम्बर,
मूर्तिमती ज्योतिःस्नाता ऊषा-सम शोभाङ्गिनी
पुष्प चुन रही थीं पूजार्थ वहाँ एकाकिनी
करमें ले पुष्प-पात्र। मैंने कहा आके पास,—
"देवो, श्रम श्रेय नहीं तुम्हें, आज्ञा हो, तो दास
कुसुम चयन करे।"

देवयानी— "भद्र, तव परिचय ?"
विस्मित हो पूछा मैंने, उत्तर था सविनय,—
"तव पूज्य पिताका मैं शिष्य बननेके लिए
आया हूँ तुम्हारे द्वार, देवी, बड़ी आशा किये,
बृहस्पति-सुत हू मैं।"

कच— शंका रही मनको,
ऐसा न हो दैत्य - गुरु स्वर्गके ब्राह्मणको
कर दें निराश कहीं।

देवयानी— मैं पिताके पास गई
हँसके मैं बोली, "पिता, मेरी एक भिक्षा नई
तव पदोंमें है आज।" मुझे पास बैठाकर,
स्नेहके सहित हाथ फेर मेरे शीशपर,
बोले मृदुस्वरसे, "अदेय तुम्हें क्या है? कहो!"
मैंने कहा, "बृहस्पति-सुत आये, उन्हें लहो
निज शिष्य-रूपमें, यही है बिनती विनीत।"
इस घटनाको हुए दीर्घ काल गया बीत;
किन्तु लगता है जैसे यह कलकी ही बात।

कच— ईर्ष्या-वश दैत्योंने लगाके तीन बार घात
वध किया मेरा, किन्तु तुमने ही दया धार
देवी, मेरे प्राण मुझे लौटा दिये तीनों बार।
यह बात सदा मुझे याद रहेगी, तथैव
रखेगी कृतज्ञता जगाये उरमें सदैव।

देवयानी— कृतज्ञता! भूल जाओ, होगा मुझे दुःख नहीं।
किया उपकार जो, हो जाय वह भस्म यहीं;
दान-प्रतिदान नहीं चाहती हूँ। किन्तु कहीं
किसी सुखकी क्या स्मृति मनमें तुम्हारे नहीं?
भीतर-बाहर तव आनन्द-संगीत-स्वर
ध्वनित हुआ हो कभी, रेणुवती-तटपर
पुष्प-वाटिकामें किसी संध्याको पठन-लीन
मनमें पुलक-राशि जागी यदि हो नवीन,
सायाह्न आकाश और पुष्पित निकुंज सारा
कुसुम-सौरभ-सग हृदय-उच्छ्वास द्वारा
व्याप्त हो गया हो यदि, वही सुख-स्मृति जागे
मनमें तुम्हारे सदा; कृतज्ञता दूर भागे।
गाया हो किसीने यहाँ गीत ऐसा, जिसे सुन

हर्षित हुआ हो चित्त, किसीने वसन चुन
पहना हो ऐसा कभी जिसको निरख कर
सहज प्रशंसा-वाणी आ गई हो मुंहपर,
तृप्त-दृग मुग्ध-मन होके सोचा हो कि 'अहा,
कैसा दिव्य रूप आज इसका है लग रहा!'
करना स्मरण तुम, सखे, बातें ये ही सब
सुखमय स्वर्गमें हो प्राप्त अवकास जब।
याद है कि नहीं वह काननकी दिव्य छटा,
नील जटा तुल्य जब पावसकी श्याम घटा
छा जाती दिगन्त-व्यापी, होती वृष्टि धुआँधार,
और वे निठल्ले दिन बन कल्पनाके भार
हृदयको देते व्यथा। अकस्मात सरसित
आता था वसन्तका सकल-बाधा-विरहित
उल्लास हिल्लोलाकुल यौवनका समुत्साह;
संगीत - मुखर वह आवेगका सुप्रवाह
एक - एक लहरसे पत्र-पुष्प - निकरोंको
लता - तरुओंको वन - वनान्तर - प्रान्तरोंको
आनन्द-प्लावित कर देता रहा। एक बार
सोच देखो, कितनी ऊषाएँ, ज्योत्स्ना, अन्धकार,
सुरभित कितनी अमाएँ आ इसी वनमें
सुख - दुःख - संग मिल गईं तव जीवनमें;
उन्हींमें क्या कोई प्रात, कोई मुग्ध विभावरी,
कोई संध्या, कोई उर-क्रीड़ा मंजु व्रीड़ा भरी,
कोई मुख, कोई सुख, तुमने न ऐसा देखा
उरमें रहेगी बनी जिसकी सुछबि - रेखा
चिरदिन, चिररात्रि? पाया बस उपकार?
और कुछ भी न पाया? कोई शोभा, कोई प्यार?

कच— और जो पाया है, सखी, वह है अकथनीय।
रक्तमें जो बीज बह रहा मर्ममें मदीय
कैसे दिखलाऊँ उसे?

देवयानी— जानती हूँ सारी बात,
मम उर-दीप्तिसे तुम्हारा उर अकस्मात
चौंक जाते देखा मैंने, सखे, कितनी ही बार
मानो एक निमिषमें। स्पर्धा और स्वाधिकार
इसीलिए रमणी जताती आज। रहो यहीं,
जाओ मत; सुख यश-गौरवमें कोई नहीं।
यहाँ हम तुम मिल रेणुमती-तीरपर
अभिनव स्वर्गलोक सिरजेंगे सुखकर
निभृत विश्रब्ध मुग्ध निखिल-विस्मृत शान्त
दो हृदय एक कर वनच्छायामें एकान्त।
मनकी तुम्हारे बातें मुझसे न छिपी रहीं,
ज्ञात मुझे है रहस्य।

कच— नहीं, देवयानी, नहीं।

देवयानी— नहीं? सरासर झूठ! हृदय तुम्हारा क्या न
देखा मैंने? प्रेम अन्तर्यामी क्या न सके जान?
फूल खिल पल्लवोंमें छिपा रहे, किन्तु कहाँ
उसकी छिपेगी गन्ध? मैंने लक्ष्य किया यहाँ
कितने ही दिन, मुंह उठा मुझे देखा ज्यों ही,
ज्यों ही मेरी बोली सुनी, व्यग्रताके साथ त्यों ही
हृदय सर्वाङ्ग तव हो गया है कम्पग्रस्त,
हीरेके हिलनेसे ज्यों प्रभा होके अस्तव्यस्त
लेती है हिलोरें। देखा मैंने क्या न यह-सब?
पकड़में आ गये हो, बन्धु, तुम मेरे अब
बन्दी बन गये हो। ये बन्धन न होंगे ढीले।

इन्द्र अब तव इन्द्र नहीं।

कच— शुचि-स्मितशीले !
इस दैत्यपुरीमें सहस्त्र वर्ष सविशेष
इसीलिए साधना की?

देवयानी— क्यों नहीं? क्या दुःखक्लेश
जगतमें विद्याके लिए ही झेलते हैं लोग?
साधा क्या किसीने नहीं महातप महायोग
रमणीके लिए कभी? माँगकर पत्नी - वर
तपतीकी आशामें संवरणने तप कर
प्रखर तपन ओर गगनमें दृष्टि कर
निराहार साधना क्या की नहीं कठोरतर?
विद्या ही दुर्लभ, हाय, इतना सहज - प्राप्त
सुलभ क्या प्रेम ही है? सहस्त्र वत्सर - व्याप्त
साधना अमित किस निधिके लिए की, यही
जानते स्वयं न तुम। एक ओर विद्या रही,
रही मैं अपर ओर। देखते रहे हो नित
उत्सुक हो कभी मुझे, कभी उसे; अनिश्चित
तव मनने सयत्न दोनोंकी ही संगोपित
आराधना की है। हम दोनों जनी समर्पित
होनेको आई हैं आज एक दिन, एकसाथ;
चाह जिसकी हो, सखे, उसका ही गहो हाथ।
सरल साहससे कहोगे यदि खोल मुख,
"विद्यामें न कोई सुख, यशमें न कोई सुख;
देवयानी, साधनाकी सिद्धि तुम्हीं मूर्तिमती,
वरण तुम्हींको करता हूँ आज शोभावती।"
तो क्या होगी हानि और लज्जा? रमणीका मन,
सखे, है सहस्त्र-वर्ष-व्यापी साधनाका धन।

कच— देवताओंसे, हे शुभे, किया रहा मैंने प्रण,
'प्राप्त कर महासंजीवनी विद्या-रूपी धन
लौटूंगा मैं देवलोक।' हुआ मेरा आगमन
इसी हेतु। मनमें सदैव मेरे वह प्रण
जागता रहा है। पूर्ण हो गई प्रतिज्ञा सार्थ,
इतने दिनोंपै यह जीवन हुआ कृतार्थ।
आज मेरी कोई स्वार्थ-कामना नहीं है।

देवयानी— आह!
धिक् मिथ्याभाषी, बस, विद्याकी तुम्हें थी चाह?
गुरु-गृह आके तुम सीधे-सादे छात्र बन
एकान्तमें दिन-रात करते थे अध्ययन?
शास्त्र-ग्रन्थोंमें ही सदा दृष्टि रही लवलीन?
अन्य सभी बातोंसे क्या तुम रहे उदासीन?
अध्ययनशाला त्याग फिरते थे वन-वन
फूलोंके लिए क्यों? फिर गूँथ उन्हें उसी क्षण
सहास्य प्रफुल्ल-मुख लाके देते माला वही
इस विद्याहीनाको क्यों? व्रत क्या कठोर यही?
यही व्यवहार था तुम्हारा साधु-छात्रवत?
प्रातःकाल रहते थे तुम अध्ययन-रत,
आती मैं ले खाली साजी, हँसके हो जाती खड़ी,
पोथी रख तुम उठ आते थे क्यों उस घड़ी?
क्यों प्रफुल्ल हिम-सिक्त कुसुमोंकी वर्षा कर
करते थे मेरी पूजा? अपराह्न होनेपर
तरु-आलवालमें मैं जल सींचती थी जब,
देख मुझे श्रान्त क्लान्त होके क्यों सदय तब
करते सहायता थे मेरी? क्यों स्व-पाठ त्याग
मेरे मृग-शिशुको खिलाते रहे सानुराग?

प्रेम-नत दृगोंकी ज्यों स्निग्ध छायामयी धीर
दीर्घ पलकें हैं झुक जातीं, त्यों ही नदी-तीर
तिमिर उतरता था नीरव संध्याको जब,
मुझको सुनाते क्यों थे सुखद संगीत तब,
सीखा जिसे स्वर्गमें था ? विद्या लेने आये, पर
स्वर्गकी चतुरताका गुप्त जाल फैलाकर
हरा क्यों हृदय मेरा ? आज मैंने जान लिया
मुझे वश कर तुम घर चाहते थे किया
मनमें पिताके मेरे। साध लिया कार्य सब,
करोगे प्रयाण कर मुझको प्रदान अब
थोड़ी-सी कृतज्ञता, ज्यों जाके कोई राजद्वार
कृतकार्य होके देता प्रहरीको पुरस्कार
मनमें सन्तुष्ट होके।

कच— हाय री, मानिनी नारी!
होगा कोई सुख तुम्हें, जान सत्य सब बात सारी ?
साक्षी मेरा धर्म, मैंने कोई न प्रतारणा की,
सदा तव उरके सन्तोषकी ही साधना की,
सानन्द कपट-हीन हृदयसे सेवा कर।
इसलिए दोषी हूँ तो दण्ड मुझे गुरुतर
दे रहे विधाता ठीक। मेरे मनमें थी,··· पर
कहूँगा न बात वह। होगी जो न हितकर
किसीके लिए भी त्रिभुवनमें; औ' तिसपर
जो है मेरी निजी बात, उसे तुम सुनकर
करोगी क्या ? प्रेम करता हूँ या कि नहीं, भला
लाभ इस तर्कसे क्या होगा आज ? मैं तो चला
निज कार्य साधनेको। स्वर्ग यदि स्वर्ग नहीं
लगेगा, औ' मन मेरा व्याकुल फिरेगा कहीं

दूर वन्य-प्रान्तरोंमें शर - विद्ध मृग - सम,
चिर-तृष्णा-दग्ध सदा रहेंगे ये प्राण मम
सभी कार्य करनेमें, तो भी सुख - विरहित
स्वर्ग मुझे जाना होगा। देवतोंको अभीप्सित
संजीवनी - विद्या देके नूतन देवत्व दान
करूँगा मैं ; होंगे तभी सार्थक ये मेरे प्राण।
इसके आगे न मान्य कोई सुख, कोई साध।
क्षमा करो, देवयानी, क्षमा करो अपराध।

यानी— क्षमा कहाँ मनमें है मेरे ? यह नारी-हिया
तुमने ही, अहो विप्र, कुलिश-कठोर किया।
चल दोगे स्वर्ग तुम स्वकर्तव्य - पुलकित
स-गौरव कर सब दुःख-शोक दूरीकृत।
कार्य क्या है मेरा, क्या है व्रत मेरा ? प्रतिहत
निष्फल जीवनमें क्या मेरे शेष ? अभिमत
गौरव काहेका अब ? इस वनमें ही दीना,
निःसङ्गिनी, एकाकिनी, नत-शिर, लक्ष्यहीना
बनी बैठी रहूँगी मैं। घूमेगी जिधर दृष्टि
बाँधेगी सहस्र क्रूर स्मृतियोंकी वहीं सृष्टि।
लज्जा छिपी वक्षमें डसेगी मुझे बारम्बार।
धिक् धिक्, कहाँसे आ गये तुम अनुदार
निर्मम पथिक ! बस, दो घड़ीका सु-समय
काटनेके छलसे ही मेरे चिर-शान्तिमय
जीवनके वनच्छाया - तले बैठ शोभाकर
जीवनके सुखोंको फूलोंकी भाँति छिन्न कर
एक-सूत्रमें पिरोके मालाका ग्रन्थन किया,
जानेके समय किन्तु उसे साथ नहीं लिया,
उस सूक्ष्म सूत्रको अवज्ञासे दो-टूक कर

चल दिये तुम आज। लोट रही धूलपर
महिमा निखिल इन प्राणोंकी स-परिताप।
तुमको मैं दे रही हूँ, आज यह अभिशाप,—
"जिस विद्याके लिए ही किया मेरा तिरस्कार,
पाओगे न उसपर निज पूर्ण अधिकार।
भारवाही होगे, उसे कर न सकोगे भोग;
शिक्षा दोगे, किन्तु कर सकोगे न उपभोग।"

कच— मैं देता हूँ वर, "देवी, तुम सुखी होओगी,
विपुल गौरव लह सर्व ग्लानि भूलोगी।"

न्यायदण्ड

दे डाला प्रत्येक व्यक्तिके करमें अपने-आप,
हे राजाधिराज, तुमने तो अपना न्याय-विधान।
और दिया प्रत्येक व्यक्तिके सिरपर शासन-भार
अति दुरूह यह कार्य और तव यह अति गुरु सम्मान
शिरोधार्य कर सकूँ विनयसे करके तुम्हें प्रणाम।
डरूँ किसीसे कभी नहीं जब करूँ तुम्हारा काम।
क्षमा क्षीण दुर्बलता जिस थल, उस थल, मेरे रुद्र,
निष्ठुर मैं हो सकूँ तुम्हारा पाकरके आदेश।
सत्य वाक्य मेरी रसनामें खर करवाल समान
उठे झलमला पाकरके तव इङ्गित औ' सन्देश।
(प्रभो, मुझे तुम इतना बल दो) रक्खूँ तव सम्मान
तव विचार-सिंहासनपर मैं पाकर अपना स्थान।
जो करता अन्याय और जो सह लेता अन्याय
घृणा तुम्हारी उसको तृण-सम तुरत दहन कर जाय।

डाकघर

१

माधव दत्त—बड़ी मुसीबतमें पड़ गया। जब वह नहीं था, तब नहीं ही था; किसी बातकी चिन्ता ही न थी। अब न-जाने कहाँसे आकर उसने मेरा घर घेर लिया है; उसके चले जानेसे मेरा यह घर फिर घर ही नहीं रह जायगा। वैद्यजी, आप क्या समझते हैं, उसे—

वैद्य—उसके भाग्यमें यदि आयु बदी होगी, तो बहुत दिन जी भी सकता है, पर आयुर्वेदमें जैसा लिखा है उससे तो—

माधव—क्या कह रहे हैं!

वैद्य—शास्त्रमें लिखा है, 'पैत्तिकान् सन्निपातजान कफवातसमुद्भवान'—

माधव—रहने दीजिये, अब श्लोक न सुनाइये, इससे मुझे और-भी डर लगता है। अब क्या करना चाहिए सो बताइये?

वैद्य (सुँघनी सूंघकर)—खूब सावधानीसे रहना चाहिए।

माधव—सो तो ठीक बात है, पर किस विषयमें सावधान रहना चाहिए सो तय कर जाइये।

वैद्य—मैं तो पहले ही कह चुका हूं, उसे बाहर बिलकुल नहीं निकलने देना चाहिए।

माधव—बच्चा ठहरा, उसे रात-दिन घरमें रोक रखना बड़ा मुश्किल है।

वैद्य—तो क्या करेंगे बताइये? शरत्‌ऋतुकी धूप और हवा दोनों ही उसके लिए जहर है। कारण शास्त्र कहता है, 'अपस्मारे ज्वरे काशे कामलायां हलीमके'—

माधव—बस, बस, अब आप शास्त्र रहने दीजिये। तो उसे अब घरमें बन्द ही रखना होगा, और कोई उपाय नहीं?

वैद्य—नहीं। कारण, 'पवने तपने चैव'—

माधव— आपका यह 'चैव' मेरे क्या काम आयेगा बताइये। उसे रहने दीजिये,— क्या करना होगा, सो बताइये ? पर, आपकी यह व्यवस्था बहुत ही कठोर है, वैद्यजी ! रोगका सारा दुःख तो बेचारा चुपचाप सह लेता है, पर दवा पीते समय उसका कष्ट देखकर मेरी छाती फटने लगती है।

वैद्य—किन्तु कष्ट जितना प्रबल है, उसका फल भी उतना अधिक है। इसीसे महर्षि च्यवन कहते हैं, 'भेषजं हितवाक्यञ्च तिक्तं आशुफलप्रदम्'। अच्छा तो, अब आज्ञा हो ? [प्रस्थान

बाबाका प्रवेश

माधव—लो, बाबा आ गये। मुसीबत है।

बाबा—क्यों ? मुझसे इतना डर क्यों ?

माधव—तुम जो बच्चोंको बहकानेमें उस्ताद ठहरे !

बाबा—तुम तो बच्चे नहीं हो, और तुम्हारे घरमें भी कोई बच्चा नहीं ; फिर डर किस बातका ?

माधव—बच्चा एक ले आया हूं जो !

बाबा—कैसे ?

माधव—मेरी स्त्री जो बच्चा गोद लेनेके लिए व्याकुल थी।

बाबा—सो तो बहुत दिनसे सुन रहा हूं। पर, तुम तो लेना नहीं चाहते थे ?

माधव—तुम तो जानते ही हो, मैंने कितने कष्ट उठाये हैं तब कहीं थोड़ा-बहुत धन जोड़ पाया है। पराया लड़का आकर बहु-परिश्रमके उस धनको बिना-परिश्रमके उड़ायेगा, इस बातकी कल्पना करते ही मेरा मन उदास हो जाया करता था। लेकिन, यह लड़का, न-जाने कैसे मेरे मन बस गया—

बाबा—इसीसे उसके लिए जितना रुपया खर्च कर रहे हो उतना हो समझ रहे हो कि यह रुपयेका परम सौभाग्य है !

माधव—पहले जो रुपया कमाता था वह एक तरहका नशा-सा था,

बगैर कमाये चैन ही नहीं पड़ता था। मगर जब जो रुपया कमा रहा हूँ सो सब उस लड़केके लिए ही, कमानेमें अब एक तरहका आनन्द पता हूँ।

बाबा—अच्छा, यह तो बताओ, लड़का तुम्हें मिला कहाँसे?

माधव—मेरी स्त्रीका भतीजा लगता है। छुटपनसे ही बेचारेकी मा नहीं है। और, उस दिन उसका बाप भी जाता रहा।

बाबा—अहः, बेचारा! तब तो उसे मेरी जरूरत है।

माधव—वैद्यजी कहते हैं, उसके जरा-से शरीरमें बात-पित्त-कफ ऐसा उपद्रव मचा रहे हैं कि उसके बचनेकी ज्यादा आशा नहीं। उसकी रक्षाका अब एकमात्र उपाय है उसे किसी तरह शरद्‌ऋतुकी धूप और हवासे बचाकर घरमें बन्द रखना। और इस बुढ़ापेमें तुम्हारा खेल ठहरा बच्चोंको घरसे बाहर निकलना! इसीसे तुमसे डर लगता है।

बाबा—झूठ नहीं कह रहे तुम, बिलकुल ही भयङ्कर हो उठा हूँ मैं, शरद्‌ऋतुकी धूप और हवाकी तरह। लेकिन भइया, घरमें रोक रखनेका खेल भी मैं थोड़ा-बहुत जानता हूँ। जरा मैं अपना काम-काज कर आऊँ, फिर उस बच्चेसे आकर ऐसा मेल करूँगा कि तुम भी कहोगे! [प्रस्थान

अमलका प्रवेश

अमल—फूफाजी!

माधव—क्या अमल?

अमल—मैं क्या अब आँगनमें नहीं जा सकूंगा?

माधव—नहीं बेटा।

अमल—वहाँ, जहाँ बुआजी चक्की पीसा करती हैं वहाँ भी नहीं! वो देखो, गिलहरी अपनी पूँछपर बैठी-हुई कैसी कुटुर-कुटुर गेहूँकी किनकी खा रही है, वहाँ मैं नहीं जा सकता?

माधव—नहीं बेटा।

अमल—मैं गिलहरी होता तो कैसा अच्छा होता! लेकिन, तुम मुझे निकलने क्यों नहीं देते फूफाजी?

माधव—वैद्यजीने कहा है, बाहर निकलनेसे तुम बीमार पड़ जाओगे।

अमल—वैद्य कैसे जान गये ?

माधव—जानेंगे नहीं, वैद्य जो ठहरे ! उन्होंने बड़े-बड़े शास्त्र पढ़े हैं।

अमल—शास्त्र पढ़नेसे क्या सब जान जाते हैं ?

माधव—जरूर। तुम इतना भी नहीं जानते !

अमल (गहरी साँस लेकर)—मैंने शास्त्र नहीं पढ़े। इसीसे मैं कुछ नहीं जानता।

माधव—देखो, बड़े-बड़े पण्डित सब तुम्हारी ही तरह हैं, वे घरसे बाहर नहीं निकलते।

अमल—नहीं निकलते ?

माधव—नहीं, निकलें कब बताओ ? वे बैठे-बैठे शास्त्र पढ़ा करते हैं, और किसी तरफ उनकी नजर ही नहीं। अमल बाबू, तुम भी बड़े होकर पण्डित होओगे, बैठे-बैठे शास्त्र पढ़ा करोगे। तुम्हें देखकर सब आश्चर्यसे दंग रह जाया करेंगे।

अमल—नहीं नहीं, फूफाजी, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, मैं पण्डित नहीं होऊँगा, फूफाजी, मैं पण्डित नहीं होऊँगा।

माधव—यह क्या बात है अमल ! मैं अगर पण्डित हो सकता तो बहुत खुश होता।

अमल—मैं जो-है-सो सब देखूँगा, घूम-फिरकर सब देखा करूंगा।

माधव—क्या देखोगे, देखनेको है क्या जो देखोगे ?

अमल—क्यों, उस खिड़कीके पास बैठनेसे तो सब दीखता है। बहुत दूर वो जो पहाड़ दीखता है, मेरी तबीयत होती है कि उसे पार करके चला जाऊँ।

माधव—तुम कैसी पागलों जैसी बात करते हो अमल ! कोई काम नहीं, जरूरत नहीं, खामखा पहाड़ पार होकर चले जाओगे ! पहाड़ इतना ऊँचा क्यों है, इसीलिए न, कि उसे पार करना मना है। नहीं तो, इतने बड़े-बड़े पत्थर इकट्ठे करके इतना ऊँचा पहाड़ क्यों बनाया गया !

अमल—फूफाजी, तुम्हें क्या यही मालूम होता है कि वह मना कर रहा है ? मुझे मालूम होता है पृथ्वी बात नहीं कर सकती, इसीसे नीला आकाश हाथ बढ़ा-बढ़ाकर इस तरह उसे बुलाया करता है। बहुत दूर जो लोग घरमें बैठे रहते हैं, दोपहरके वक्त खिड़कीके पास बैठकर वे उसकी पुकार सुना करते हैं। पण्डितोंको शायद सुनाई नहीं देता ?

माधव—वे तो तुम सरीखे पागल नहीं हैं। और वे सुनना चाहते भी नहीं।

अमल—मुझ-जैसा एक-और पागल मैंने कल देखा था।

माधव—सच ? कैसा था वह ?

अमल—उसके कँधेपर थी बाँसकी एक लाठी। लाठीके छोरपर एक पोटली बँधी थी। उसके बायें हाथमें एक लोटा था। फटी-पुरानी पनही पहने-हुए वह खेत-मैदान पार करता-हुआ उस पहाड़की तरफ ही जा रहा था। मैंने उसे बुलाकर पूछा, 'तुम कहाँ जा रहे हो ?' उसने कहा, 'कुछ कह नहीं सकता, ऐसे ही कहीं जा रहा हूं।' मैंने पूछा, 'क्यों जा रहे हो ?' उसने कहा, 'काम ढूँढ़ने।' अच्छा, फूफाजी, काम क्या ढूँढ़ना पड़ता है ?

माधव—नहीं तो क्या ! कितने लोग काम ढूंढ़ा करते हैं, कोई ठीक है !

अमल—तो ठीक है, मैं भी उन्हींकी तरह काम ढूंढ़ा करूंगा।

माधव—न मिला तो ?

अमल—न मिला तो फिर ढूँढ़ने लगूँगा। फिर वो आदमी चला गया, मैं दरवाजेके पास खड़ा-खड़ा उसे देखने लगा। वो जो वहाँ गूलरके पेड़के नीचेसे झरना बह रहा है, वहाँ उसने लाठी रखकर झरनेके पानीमें धीरे-धीरे हाथ-पाँव धोये, लोटेमें झरनेका पानी भरा; और फिर पोटलीमेंसे सतुआ निकालकर खाने लगा। खा चुकनेके बाद फिर पोटली बाँधके कंधेपर लटकाई; और धोती ऊँची करके झरनेके पानीमें उतरकर धीरे-धीरे पार होकर चला गया। मैंने बुआजीसे कह रक्खा है, फूफाजी, कि मैं भी एक दिन उस झरनेके किनारे जाकर सतुआ खाऊँगा।

माधव—बुआजीने क्या कहा ?

अमल—बुआजीने कहा कि 'तुम अच्छे हो जाओ, तब तुम्हें उस झरनेके पास ले जाकर सतुआ खिला लाऊँगी।' कब मैं अच्छा होऊँगा, फूफाजी ?

माधव—अब देर नहीं है बेटा।

अमल—देर नहीं है ? अच्छा होते ही मैं चला जाऊँगा, हाँ !

माधव—कहाँ जाओगे ?

अमल—ऐसे बहुत-से टेढ़े-मेढ़े झरनोंके पानीमें पाँव डुबो-डुबोकर पार हो-होकर मैं चलता चलूँगा; दोपहरको जब सब अपने-अपने घरके दरवाजे बन्द करके सोते रहेंगे तब मैं कितनी दूर जाकर कहाँ-कहाँ काम ढूंढ़ता फिरूंगा, किसीको पता भी न चलेगा !

माधव—अच्छी बात है, पहले तुम अच्छे तो होओ, फिर तुम—

अमल—फिर मुझसे पण्डित होनेको मत कहना, फूफाजी।

माधव—अच्छा, तुम क्या होना चाहते हो बताओ ?

अमल—अभी मुझे कुछ याद नहीं पड़ता। अच्छा, मैं सोचके बताऊंगा।

माधव—लेकिन तुम इस तरह हरएक परदेसी आदमीको बुलाकर बात न किया करो।

अमल—परदेसी आदमी मुझे बड़े अच्छे लगते हैं।

माधव—तुम्हें अगर पकड़ ले जाता ?

अमल—तब तो बड़ा अच्छा होता। पर, मुझे तो कोई पकड़के ले नहीं जाता; सभी-कोई खाली बिठाये रखते हैं।

माधव—मुझे काम है, मैं चल दिया। लेकिन देखना बेटा, बाहर नहीं निकलना, अच्छा !

अमल—अच्छा, नहीं निकलूँगा। सड़कके किनारेवाले इसी कमरेमें मैं बैठा रहूंगा।

२

दहीवाला—दही लोऽ, दहीऽ, मीठा ताजा बढ़िया दही-ई !

अमल—ओ दहीवाले, दहीवाले, ओ दहीवाले !

दहीवाला—क्यों, क्यों बुलाते हो मुझे ? दही लोगे ?

अमल—कैसे लूंगा ? मेरे पास तो पैसे नहीं हैं।

दहीवाला—कैसे लड़के हो तुम ! लोगे नहीं तो मुझे अबेर क्यों करा रहे हो ?

अमल—मैं अगर तुम्हारे साथ जा सकता, तो चला जाता।

दहीवाला—मेरे साथ ?

अमल—हाँ। तुम कितनी दूरसे आकर आवाज लगाते-हुए चले जा रहे थे, इससे मेरा मन कैसा-तो हो उठा !

दहीवाला (दहीकी हँड़िया उतारकर)—बाबू, तुम यहाँ बैठे-बठे क्या किया करते हो ?

अमल—वैद्यजीने मुझे बाहर निकलनेको मनाही कर दी है, इसीसे दिन-भर मैं यहीं बैठा रहता हूं।

दहीवाला—तुम्हें किया हुआ है बाबू ?

अमल—मुझे नहीं मालूम। मैं कुछ पढ़ा-लिखा नहीं हूं न, इसीसे मैं नहीं जानता कि मुझे क्या हुआ है। दहीवाले, तुम कहाँसे आ रहे हो ?

दहीवाला—अपने गाँवसे।

अमल—अपने गाँवसे ? तुम्हारा गाँव बहुऽत दूर है, न ?

दहीवाला—हमारा गाँव उस पंचमोड़ा-पहाड़के नीचे, शामली-नदीके किनारे है।

अमल—पंचमोड़ा पहाड़, शामली नदी,—क्या मालूम, शायद तुम्हारा गाँव देखा है मैंने, कब देखा है सो याद नहीं आता।

दहीवाला—तुमने देखा है हमारा गाँव ? पहाड़के नीचे कभी गये थे क्या ?

अमल—नहीं, कभी नहीं गया। पर अपने मनमें शायद मैंने देखा है।

पुराने जमानेके बहुत-से बड़े-बड़े पेड़ोंके नीचे तुम्हारा गाँव है, लाल सड़कके किनारे। है न?

दहीवाला—तुम ठीक कहते हो बाबू!

अमल—वहाँ पहाड़के नीचे-ऊपर गायें चरा करती हैं।

दहीवाला—ताज्जुबकी बात है, बिलकुल ठीक कह रहे हो! हमारे गाँवमें बहुत गाय हैं, वे पहाड़पर चरने जाती हैं।

अमल—गाँवकी स्त्रियाँ-सब नदीमें पानी भरने आती हैं। सिरपर गागर भर-भरके ले जाती हैं। वे लाल-साड़ी पहनती हैं।

दहीवाला—अरे वाह, तुम तो बिलकुल ठीक बताये जा रहे हो! हमारे मुहल्लेकी सब औरतें नदीसे ही पानी भरती हैं। पर सभी लाल-साड़ी पहनती हों, सो बात नहीं। लेकिन तुम जरूर वहाँ कभी घूमने गये होगे।

अमल—मैं सच कहता हूं, दहीवाले, एक दिन भी मैं वहाँ नहीं गया। वैद्यजी जिस दिन मुझे बाहर निकलनेको कहेंगे, उस दिन तुम मुझे ले जाओगे अपने गाँवमें?

दहीवाला—क्यों नहीं, जरूर ले जाऊंगा।

अमल—मुझे तुम अपनी तरह दही बेचना सिखा देना। मैं भी तुम्हारी तरह दूर-दूर जाकर आवाज लगाके दही बेचा करूंगा।

दहीवाला—राम राम, तुम दही क्यों बेचोगे बाबू! तुम्हारे क्या कमी है! बड़ी-बड़ी पोथी पढ़-पढ़के तुम पण्डित बनना।

अमल—नहीं नहीं, पण्डित तो मैं कभी होऊंगा ही नहीं। मैं तुम्हारे गाँवसे दही लाकर उस बरगदके पेड़के नीचेसे लाल-सड़कसे चलके, बहुत दूर-दूर गाँव-गाँव जाकर तुम्हारी तरह दही बेचा करूंगा। कैसे तुम आवाज लगाते हो—दही लोऽ, दही! मीठा ताजा बढ़िया दही! मुझे भी ऐसे सुरसे बोलना सिखा देना।

दहीवाला—हाय री तकदीर! यह भी कोई सीखनेका सुर है!

अमल—नहीं नहीं, तुम्हारा ऐसे सुरसे बोलना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। आकाशके छोरमेंसे चिड़ियोंकी बोली सुनकर जैसे मन व्याकुल हो

उठता है, वैसे ही उस चौराहेसे, पड़ोंकी कतारोंमेंसे, तुम्हारा जो सुर सुना, तो मेरा मन चाहता था, क्या तो चाहता था, कह नहीं सकता।

दहीवाला—बबुआ-बेटा, लो, तुम दही खाओ।

अमल—मेरे पास पैसे जो नहीं हैं?

दहीवाला—नहीं नहीं नहीं, तुम पैसोंकी बात मत कहो। तुम मेरा दही खाओगे तो मुझे बड़ी-भारी खुशी होगी।

अमल—तुमको बहुत देर गई, न?

दहीवाला—कुछ भी देर नहीं हुई, बाबू, मेरा जरा भी नुकसान नहीं हुआ। दही बेचनेमें कितना आनन्द है, सो आज तुमसे सीख लिया मैंने।

[प्रस्थान

अमल (सुरीले कण्ठसे)—दही लोऽ, दहीऽ, मीठा ताजा बढ़िया दही-ई! चम[illegible]ा-पहाड़की शामली-नदीके किनारेवाले गाँवका दही, जहाँकी ग्वालिनें भोरमें पेड़के नीचे गाय दुहती हैं और शामको दही जमाती हैं उस गाँवका दही। दही लोऽ, दही-ई! बढ़िया मीठा ताजा दही!— अरे, पहरेवाला आ गया! पहरेवाले, ओ पहरेवाले, जरा एक बात सुन जाओ न!

प्रहरी—ऐसे क्यों पुकारते हो मुझे? तुम्हें डर नहीं लगता?

अमल—क्यों, तुमसे डरनेकी क्या बात है?

प्रहरी—तुम्हें अगर पकड़ ले गया तो?

अमल—कहाँ पकड़ ले जाओगे? बहुत दूर, उस पहाड़के उस पार?

प्रहरी—पकड़के सीधा राजाके पास ले जाऊँ तो?

अमल—राजाके पास! ले चलो न मुझे। लेकिन वैद्यने जो मुझे बाहर जानेकी मनाही कर दी है। मुझे कोई भी कहीं पकड़के नहीं ले जा सकता। दिन-रात मुझे यहीं बैठा रहना पड़ेगा।

प्रहरी—वैद्यने मनाही कर दी है? अ-ह-ह, इसीसे तुम्हारा चेहरा सफेद-फक पड़ गया है। आँखोंके नीचे गड्ढे पड़ गये हैं। तुम्हारे हाथोंकी नसें चमक रही हैं।

अमल—तुम घण्टा नहीं बजाओगे पहरेवाले?

प्रहरी—अभी समय नहीं हुआ है।

अमल—कोई कहता है, समय निकला जा रहा है; कोई कहता है, समय नहीं हुआ। अच्छा, तुम घण्टा बजाओगे तभी न समय होगा?

प्रहरी—ऐसा कहीं होता है! समय होनेपर तब हम घण्टा बजाते हैं।

अमल—बड़ा अच्छा लगता है तुम्हारा घण्टा। सुननेमें बड़ा मीठा लगता है। दोपहरको घरके सब लोग जब खा-पी चुकते हैं, फूफाजी कहीं कामपर चले जाते हैं, बुआजी 'रामायण' पढ़ते-पढ़ते सो जाती हैं, हमारा सुखुआ कुत्ता जब आँगनके एक कोनेमें अपनी पूँछमें मुँह छिपाकर सोता रहता है, तब तुम्हारा घण्टा बजता है, टन टन टन, टन टन टन! तुम्हारा घण्टा क्यों बजता है?

प्रहरी—घण्टा सबसे यही बात करता है कि समय बैठा नहीं है, समय बराबर चलता ही रहता है।

अमल—चलके कहाँ जाता है? किस देशमें?

प्रहरी—यह कोई नहीं जानता।

अमल—उस देशको किसीने देखा नहीं है? मेरा बड़ा जी चाहता है, उस समयके साथ मैं भी चला जाऊँ, जिस देशका हाल कोई नहीं जानता, बहुत दूरके उसी देशमें।

प्रहरी—उस देशमें सभीको जाना पड़ेगा, बच्चा!

अमल—मुझे भी जाना पड़ेगा?

प्रहरी—जरूर।

अमल—पर, वैद्यने जो मुझे बाहर जानेकी मनाही कर रक्खी है?

प्रहरी—किसी दिन खुद वैद्य ही हाथ पकड़के ले जायेगा।

अमल—नहीं नहीं, तुम उन्हें जानते नहीं, वे तो सिर्फ पकड़े ही रहते हैं, छोड़ते नहीं।

प्रहरी—उससे भी जो अच्छे वैद्य हैं, वे आकर छुड़ा ले जाते हैं।

अमल—मेरे वे अच्छे-वैद्य कब आयेंगे? मुझे जो अब बैठे-बैठे अच्छा नहीं लगता।

प्रहरी—ऐसी बात नहीं कहते, बेटा !

अमल—नहीं, मैं तो बैठा ही रहता हूँ, जहाँ मुझे बिठा दिया गया है वहाँसे उठके मैं तो बाहर नहीं जाता ; पर तुम्हारा जब घण्टा बजता है, टन टन टन, तब मेरा जी कैसा-तो होने लगता है। अच्छा, पहरेवाले !

प्रहरी—क्या बाबू ?

अमल—अच्छा, वो जो सड़कके उस तरफ बड़े-सारे मकानमें झण्डा फहरा रहा है, और वहाँ जो इतने आदमी जाते-आते हैं, वहाँ क्या हो रहा है ?

प्रहरी—वहाँ नया 'डाकघर' बना है ।

अमल—डाकघर ? किसका है डाकघर ?

प्रहरी—डाकघर किसका होगा ? राजाका है डाकघर। (अपने मनमें) बच्चा यह है बड़े मजेका !

अमल—राजाके डाकघरमें कहाँसे चिट्ठी आती हैं, राजाके यहाँसे ?

प्रहरी—हाँ हाँ, आती क्यों नहीं। देखना, किसी दिन तुम्हारे नामसे भी चिट्ठी आयेगी।

अमल—मेरे नामसे चिट्ठी आयेगी ? मैं तो अभी बच्चा हूं।

प्रहरी—बच्चोंको राजा बहुत प्यार करते हैं। उनके लिए वे इतनी-इतनी-सी छोटी-छोटी चिट्ठियाँ लिखते हैं।

अमल—तब तो बड़ा मजा होगा। मुझे कब चिट्ठी मिलेगी ? अच्छा, राजा मुझे भी चिट्ठी लिखेंगे, तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

प्रहरी—नहीं-तो वे तुम्हारी इस खुली खिड़की सामने ही, इतना बड़ा सुनहरी झण्डा फहराकर, डाकघर क्यों खुलवाते ? (अपने मनमें) बच्चा बड़ा प्यारा मालूम होता है।

अमल—अच्छा, राजाके यहाँसे जो चिट्ठी आयेगी उसे देने कौन आयेगा मुझे ?

प्रहरी—राजाके यहाँ बहुतसे डाकिया रहते हैं न ! देखा नहीं तुमने, गोल-गोल सोनेके तगमा लगाये वे घूमा करते हैं ?

अमल—अच्छा, वे कहाँ घूमा करते हैं ?

प्रहरी—घर-घर, देश-देश। (अपने मनमें) इसकी बातें सुनकर हसी आती है।

अमल—बड़ा होकर मैं भी राजाका डाकिया बनूंगा।

प्रहरी—हः हः हः हः ! डाकिया ! अरे, उसमें बड़ा काम करना पड़ता है। धूप हो चाहे बर्षा, गरीब हो चाहे अमीर, हरवक्त हरएकके घर चिठ्ठियाँ बाँटनी पड़ती हैं। बड़ा जबरदस्त काम है।

अमल—तुम हँसते क्यों हो ? मुझे वो काम बड़ा अच्छा लगता है। नहीं नहीं, तुम्हारा काम भी खूब अच्छा है। दोपहरको धूप हो चाहे लू चले, बराबर घण्टा बजाना पड़ता है, टन टन टन। एक दिन रातको अचानक आँख खुल गई तो सुना, अँधेरेमें भी घण्टा बज रहा है, टन टन टन।

प्रहरी—लो, चौधरी आ रहा है ! मैं भागूं अब। उसने अगर देख लिया कि मैं तुमसे बात कर रहा हूं, तो बड़ी मुश्किल होगी।

अमल—कहाँ है चौधरी, कहाँ है ?

प्रहरी—अभी बहुत दूर है, सिरपर पत्तोंकी छतरी लगाये चला रहा है।

अमल—उसे राजाने चौधरी बनाया है ?

प्रहरी—अरे नहीं। वो खुद ही चौधराई करता है। जो उसे नहीं मानता उसके ऐसा पीछे पड़ जाता है कि कुछ पूछो मत। इसीसे उससे सब-कोई डरते हैं। सिर्फ सबके साथ दुश्मनी करके ही वो अपना रोजगार चलाता है। तो आज चल दिया बाबू, कामपर जाना है। मैं कल फिर आकर तुम्हें सारे शहरकी खबर सुना जाऊंगा। [प्रस्थान

अमल—राजाकी रोज एक चिट्ठी मिला करे तो बड़ा मजा हो। इस खिड़कीके पास बैठा-बैठा पढ़ा करूं। लेकिन मैं तो पढ़ना नहीं जानता। कौन पढ़ देगा ? बुआजी तो 'रामायण' पढ़ती हैं, वे क्या राजाकी चिठ्ठी पढ़ लेंगी ? कोई न पढ़ सके तो सब इकट्ठी करके रख दूंगा, बड़ा होकर पढूंगा। पर डाकिया अगर मुझे न पहचाने ? — चौधरीजी, ओ चौधरीजी, एक बात सुन जाओ न !

चौधरी—कौन है रे, राह-चलते मुझे बुलाता है। कहाँका बन्दर है यह !

अमल—तुम तो चौधरी हो, तुम्हें तो सब मानते हैं न?

चौधरी (खुश होकर)—हाँ हाँ, मानेंगे क्यों नहीं? बहुत मानते हैं।

अमल—राजाका डाकिया तुम्हारी बात सुनता है?

चौधरी—बगैर सुने वह जी सकता है? किसीकी मजाल है जो मेरी बात न माने!

अमल—तुम डाकियासे कह दोगे कि मेरा ही नाम अमल है? मैं इस जंगलेके पास बैठा रहता हूँ।

चौधरी—क्यों, क्या बात है?

अमल—मेरे नामकी अगर कोई चिट्ठी—

चौधरी—तुम्हारे नामकी चिट्ठी! तुम्हें चिट्ठी कौन लिखेगा?

अमल—राजा अगर चिट्ठी लिखें तो—

चौधरी—हःहः हःहः! लड़केकी हिमाकत तो देखो! हःहः हःहः! राजा तुम्हें लिखेंगे! लिखेंगे क्यों नहीं, तुम जो उनके परम मित्र ठहरे! बहुत दिनोंसे तुमसे भेंट न होनेसे राजा मारे फिक्रके सूखे जा रहे हैं! अब ज्यादा देर नहीं, चिट्ठी आज-ही-कलमें आनेवाली है!

अमल—चौधरीजी, तुम इस तरह क्यों बतरा रहे हो? तुम क्या मुझसे नाराज हो?

चौधरी—बाप रे बाप! तुमपर, और नाराज! इतनी हिम्मत है मुझमें? राजाके साथ तुम्हारी चिट्ठी-पत्री चलती है! — हूं, माधव दत्तके बड़े दिमाग हो गये हैं मालूम होता है! पैसा हो गया है न, अब उसके घर राजा-बादशाहकी बातके सिवा और कुछ चरचा ही नहीं होती। ठहरो जरा, उसे मजा चखाता हूं! ठहर जा छोकड़े, जल्दी ही इन्तजाम करता हूं, जिससे राजाकी चिट्ठी तेरे घर आये।

अमल—नहीं नहीं, तुम्हें कुछ भी नहीं करना होगा।

चौधरी—क्यों, क्या हुआ? तेरी खबर मैं राजाके कान तक पहुँचा

दूँगा; फिर वे तुझे चिट्ठी देनेमें देर नहीं करेंगे। तुमलोगोंकी खबर लेनेके लिए वे अभी-तुरत पियादा भेज देंगे। — नहीं, माधव दत्तका बहुत दिमाग चढ़ गया है। राजाके कान तक बात पहुँची नहीं कि वे उसे दुरुस्त कर देंगे। [प्रस्थान

अमल—कौन हो तुम, पायल बजाती-हुई कहाँ जा रही हो? जरा ठहरोगी नहीं?

बालिकाका प्रवेश

बालिका—मुझे क्या ठहरनेकी फुरसत है! समय बीता जा रहा है।

अमल—तुम्हारा ठहरनेको जी नहीं चाहता, — मेरा भी यहाँ बैठे-बैठे जी नहीं लगता!

बालिका—तुम्हें देखकर मुझे ऐसा लगता है जैसे तुम 'सवेरेके तारे' हो! तुम्हें क्या हुआ है बताओ तो?

अमल—मालूम नहीं क्या हुआ है। वैद्यने मुझे बाहर निकलनेकी मनाही कर रक्खी है।

बालिका—अच्छा, तो तुम निकलना नहीं, वैद्यकी बात माननी चाहिए। शरारत नहीं करते, अच्छा! नहीं तो लोग तुम्हें शरारती-लड़का कहेंगे। बाहरकी तरफ देखकर तुम्हारा जी ललचा रहा है। एक काम करूँ मैं, तुम्हारी खिड़कीका एक पल्ला बन्द कर दूँ।

अमल—नहीं-नहीं, बन्द मत करो। यहाँ मेरे लिए और-सब बन्द है, सिर्फ यह खिड़की-भर खुली है। तुम कौन हो, बताओ न? मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं।

बालिका—मैं सुधा हूं।

अमल—सुधा?

सुधा—तुम नहीं जानते, मैं यहाँकी मालिनकी लड़की हूं?

अमल—तुम क्या करती हो?

सुधा—डलिया भर-भरके फूल चुनती और माला गूंथा करती हूं। अब फूल चुनने जा रही हूं।

अमल—फूल चुनने जा रही हो? इसीसे तुम्हारे पैरोंके पायल इतने खुश हो उठे हैं। तुम जितना ही चलती हो, तुम्हारे पायल उतने ही बज-बज उठते हैं, छम छम छम! मैं अगर तुम्हारे साथ जा सकता, तो ऊँची डालसे, जो दिखाई नहीं देती, तुम्हें फूल तोड़ देता।

सुधा—क्यों नहीं! फूलोंका हाल मुझसे तुम ज्यादा जानते हो न!

अमल—जानता हूं, मैं बहुत ज्यादा जानता हूं। मैं 'सात-भाई चम्पा'का * हाल जानता हूं। मुझे तो ऐसा लगता है कि सब-कोई मुझे अगर छोड़ दें, तो मैं उस घने वनमें चला जा सकता हूं जहाँ किसीको रास्ता ढूँढ़े नहीं मिलता। पतली-पतली टहनियोंपर, जहाँ मनिया-चिड़िया बैठी-बैठी झूला झूलती है वहाँ, मैं चंम्पा होकर खिल सकता हूं। तुम मेरी पारुल-दीदी बनोगी?

सुधा—क्या बुद्धि है तुम्हारी! पारुल-दीदी मैं क्यों होने लगी! मैं तो सुधा हूं, शशी मालिनकी लड़की सुधा। मुझे रोज इत्ती-सारी मालाएँ गूँथनी पड़ती हैं। मैं अगर तुम्हारी तरह यहाँ बैठी रहती, तो कैसा मजा होता!

अमल—तो दिन-भर तुम क्या करतीं?

सुधा—मेरी एक गुड़िया है न, बनिया-बहू, उसका ब्याह करती। मेरी एक बिल्ली है मिनी, उससे, — नहीं, अब जाती हूं, बहुत देर हो गई, फिर फूल नहीं मिलेंगे।

अमल—मेरे साथ और-भी थोड़ी देर बातचीत करो न, बड़ा अच्छा लगता है मुझे।

सुधा—अच्छी बात है। तो तुम शरारत मत करना, अच्छा! राजा-बाबू होकर यहीं बैठे रहना। फूल चुनकर लौटते वक्त मैं तुमसे बातचीत करूँगी।

अमल—और, मुझे एक फूल दे जाओगी?

* 'चम्पा' नामक एक बहन और उसके सात भाइयोंकी प्राचीन कहानी।

सुधा—फूल ऐसे ही थोड़े ही दूंगी ! पैसे देने होंगे।

अमल—जब मैं बड़ा होऊंगा तब तुम्हें पैसे दे दूंगा। मैं जब काम ढूँढ़ने जाऊंगा, उस झरनेके उस पार, तब मैं तुम्हें फूलके पैसे दे दूंगा।

सुधा—अच्छा।

अमल—तो तुम फूल चुनकर आओगी न ?

सुधा—आऊंगी।

अमल—आओगी ?

सुधा—आऊंगी।

अमल—मुझे भूल तो नहीं जाओगी ? मेरा नाम अमल है। याद रहेगा न तुम्हें ?

सुधा—नहीं, मैं भूलूँगी नहीं। तुम देख लेना, मुझे याद रहेगा।

[प्रस्थान

लड़कोंका प्रवेश

अमल—भाई, तुमलोग सब कहाँ जा रहे हो, भाई ? जरा मेरे पास आओ न एक बार !

लड़के—हमलोग खेलने जा रहे हैं।

अमल—क्या खेलोगे भाई तुमलोग ?

लड़के—हमलोग खेती-खेती खेलेंगे।

एक लड़का (लाठी दिखाकर)—यह देखो, हमारा हल !

दूसरा लड़का (दूसरे लड़केको दिखाकर)—हम दोनों बैल बनेंगे।

अमल—दिन-भर खेलोगे ?

लड़के—हाँ, दिन भऽर !

अमल—फिर, शामको नदीके किनारेसे घर लौट जाओगे ?

लड़के—हाँ, शामको घर चले जायेंगे।

अमल—हमारे घरके सामनेसे जाना, अच्छा !

लड़के—तुम भी चलो न, हमारे साथ खेलना ?

अमल—वैद्यने मुझे बाहर निकलनेकी मनाही कर दी है !

लड़के—वैद्यने ? वैद्यकी मनाही तुम सुनते हो ? (आपसमें) चलो भइया, चलो, देर हो रही है।

अमल—नहीं भाई, तुमलोग यहीं हमारी खिड़कीके सामने सड़कपर जरा खेलो न, मैं जरा देखूं।

लड़के—यहां कैसे खेलें ?

अमल—देखो न, मेरे कितने खिलौने हैं। ये-सब तुमलोग ले लो भाई। घरके अन्दर अकेले खेलनेमें मेरा मन नहीं लगता। मेरे ये खिलौने यों ही पड़े रहते हैं, मेरे किसी काम ही नहीं आते।

लड़के—वाह वाह वाह, कैसे बढ़िया खिलौने हैं! देखो, कैसा जहाज है! बुढ़ियाको देखो! देखो भाई, कैसा बढ़िया सिपाही है! ये सब तुम हमलोगोंको दे दोगे ? तुम्हें दुःख नहीं होगा ?

अमल—नहीं, जरा भी नहीं। सब तुमलोगोंको दे दूंगा।

लड़के—हम फिर वापस नहीं देंगे!

अमल—नहीं, वापस देनेकी जरूरत नहीं।

लड़के—कोई नाराज तो नहीं होगा ?

अमल—कोई नहीं, कोई नहीं। पर, रोज सवेरे आकर तुमलोग मेरी इस खिड़कीके सामने इन खिलौनोंसे जरा खेल जाया करना। जब ये पुराने हो जायेंगे तब फिर मैं नये खिलौने मँगा दूंगा।

लड़के—अच्छा, भाई, हम रोज आकर यहां खेल जाया करेंगे। (आपसमें) सुनो भइया, इन सिपाहियोंको यहां खड़ा करो। हमलोग लड़ाई-लड़ाई खेलेंगे। पर बन्दूक कहां हैं ? वो रही बड़ी-सारी सांटी, उसे तोड़-तोड़कर हम बन्दूक बनायेंगे। (अमलसे) पर, तुम तो सोने लग गये!

अमल—हां, मुझे बड़ी जोरको नींद आ रही है। मालूम-नहीं क्यों मुझे रह-रहकर नींद आने लगती है। बहुत देरसे बैठा हूँ, अब बैठा नहीं रहा जाता, मेरी पोठमें दर्द हो रहा है।

लड़के—अभो तो सवेरा है, अभीसे तुम्हें नींद क्यों आती है ? लो सुनो, पहले पहरका घण्टा बज रहा है।

अमल—हाँ, बज तो रहा है, टन टन टन ! मुझे सोनेको बुला रहा है।

लड़के—तो अब हमलोग जाते हैं, कल सवेरे फिर आयेंगे।

अमल—जानेके पहले मेरे एक सवालका जवाब देते जाओ, भाई ? तुमलोग तो बाहर रहते हो, राजाके उस 'डाकघर'के डाकियोंको पहचानते हो तुमलोग ?

लड़के—हाँ, पहचानते क्यों नहीं, खूब पहचानते हैं।

अमल—कौन हैं वे, नाम क्या है उनका ?

लड़के—एक है बादल डाकिया, एक है शरत, और-भी बहुत-से हैं।

अमल—अच्छा, मेरे नामकी चिट्ठी आयेगी तो वे मुझे पहचानकर दे जायेंगे ?

लड़के—क्यों नहीं दे जायेंगे ? चिट्ठीपर तुम्हारा नाम लिखा रहेगा न, उसे पढ़कर वे जरूर तुम्हें दे जायेंगे।

अमल—कल सवेरे जब तुम-सब आओ न, तब किसी डाकियाको अपने साथ लेते आना, मुझे पहचनवा देना।

लड़के—अच्छी बात है, ले आयेंगे।

३

अमल बिस्तरपर पड़ा है

अमल—फूफाजी, आज मैं अपनी उस खिड़कीके पास भी नहीं जा सकता, वैद्य मना कर गये हैं ?

माधव—हाँ, बेटा। रोज-रोज वहाँ बैठनेसे ही तुम्हारी बीमारी बढ़ गई है।

अमल—नहीं फूफाजी, नहीं, अपनी बीमारीके बारेमें मैं कुछ भी नहीं जानता, लेकिन वहाँ बैठनेसे मेरी तबीयत बड़ी अच्छी रहती है। बड़ा अच्छा लगता है वहाँ मुझे।

माधव—वहाँ बैठ-बैठकर तुमने दुनिया-भरके लड़के-बूढ़े सबसे मेल कर लिया है, मेरे दरवाजेपर रोज मेला-सा लगा रहता है। इससे कहीं तबीयत

सुधर सकती है? देखो तो सही, आज तुम्हारा चेहरा कैसा फीका पड़ गया है!

अमल—फूफाजी, आज मेरा वो फकीर आयेगा तो मुझे जंगलेके पास न देखकर लौट जायगा?

माधव—फकीर? फकीर तुम्हारा कहाँसे आया?

अमल—वही, वही जो रोज मेरे पास आकर देश-विदेशका हाल सुना जाता है। उसकी बातें मुझे बड़ी-अच्छी लगती हैं।

माधव—कौन है वह, मैंने तो उसे कभी नहीं देखा?

अमल—यही ठीक उसके आनेका समय है, अब आता ही होगा। तुम्हारे पाँवों पड़ता हूँ, फूफाजी, तुम एक बार बाहर जाकर उसे कह आओ न, वह थोड़ी देरके लिए भीतर आकर मेरे पास बैठेगा।

फकीरके भेषमें बाबाका प्रवेश

अमल—आ गये, आ गये फकीर! आओ, मेरे पास आकर बिस्तरपर बैठो।

माधव—अरे, यह क्या! तुम—

बाबा (आँखका इशारा करके)—मैं फकीर हूँ।

माधव—तुम क्या नहीं हो, यही नहीं समझमें आता!

अमल—अबकी बार तुम कहाँ गये थे फकीर?

फकीर—अबकी बार मैं क्रौञ्च-द्वीप गया था, सीधा वहींसे आ रहा हूँ।

माधव—क्रौञ्च-द्वीप!

फकीर—इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? मैं क्या तुम्हारी तरह हूं! जाने-आनेमें मेरा कुछ खर्च ही नहीं होता। मैं जहाँ चाहूँ, जा सकता हूँ।

अमल (खुशीसे ताली बजाता हुआ)—तुम बड़ी मौज करते हो! मैं जब बड़ा हो जाऊँगा तो तुम मुझे अपना चेला बना लोगे, कहा था न तुमने! याद है?

फकीर—हाँ हाँ, खूब याद है। घूमने-फिरनेके ऐसे-ऐसे मन्त्र सिखा

दूँगा मैं तुम्हें, कि समुद्र पहाड़ जंगल कहीं भी कोई तुम्हें रोक ही नहीं सकेगा।

माधव—यह-सब क्या पागलोंकी-सी बातें हो रही हैं तुमलोगोंकी ?

बाबा—बेटा अमल, पहाड़-पर्वत-समुद्रसे मैं नहीं डरता, पर तुम्हारे इन फूफाजीके साथ कहीं एक बार वैद्यजी भी आ जुटें, तो फिर मेरे मंत्रको भी शायद हार माननी पड़ेगी।

अमल—नहीं नहीं, फूफाजी, वैद्यसे तुम कुछ मत कहना। अबसे मैं यहीं पड़ा रहूँगा, कुछ भी नहीं करूंगा। लेकिन, जिस दिन मैं अच्छा हो जाऊंगा, उसी दिन मैं फकीरसे मंन्त्र सीखकर चल दूंगा। पहाड़-जंगल नदी-नाले-समुद्र कोई भी मुझे पकड़के न रख सकेगा।

माधव—छिः, बेटा, बार-बार इस तरह चले जानेकी बात नहीं कहते। इससे मेरा मन बहुत खराब हो जाता है।

अमल—क्रौञ्चद्वीप कैसा द्वीप है, मुझे बताओ न, फकीर ?

बाबा—बड़े मजेकी जगह है, देखोगे तो आश्चर्यसे दंग रह जाओगे। चिड़ियोंका देश है वह, वहाँ आदमी नहीं रहते। वहाँ जो चिड़ियाँ रहती हैं वे बात नहीं करतीं, न चलती हैं, सिर्फ गाना गाती हैं और उड़ती हैं।

अमल—वाह, बड़े मजेकी जगह है तब-तो! समुद्रके किनारे है ?

बाबा—हाँ हाँ, बिलकुल किनारेपर।

अमल—नीले रंगके पहाड़ हैं वहाँ ?

बाबा—नीले पहाड़पर तो वे रहती ही हैं। शामके वक्त उस पहाड़के ऊपर सूर्यास्तका प्रकाश आकर पड़ता है; और हरी-हरी चिड़ियोंके झुण्डके झुण्ड अपने-अपने घोंसलोंको वापस आते रहते हैं। आकाशका रंग, पहाड़का रंग और चिड़ियोंका रंग तीनों-रंगोंका ऐसा मेल होता है कि देखते ही बनता है!

अमल—पहाड़पर झरना है ?

बाबा—तुम भी खूब हो! पहाड़पर, और झरना न हो! बगैर झरनाके कहीं पहाड़ होता है। झरना हीरा-जैसा चमकता है, जैसे हीरोंको गलाकर

किसीने पानी बना दिया हो! और नाच तो देखो उसका, कैसा छमछम नाचता-हुआ उछल-उछलकर चलता है, टुन-टुन टुन-टुन पत्थरकी बाटियाँ बजा करती हैं, और वह गाता भी है कल-कल झर-झर! नाचता और शरारत करता-हुआ झरना अन्तमें जाकर क्या करता है, जानते हो, समुद्रमें कूद पड़ता है, और बराबर कूदता ही रहता है। उसका नाचना-गाना-कूदना कभी बन्द नहीं होता। किसी वैद्यके बापकी ताकत नहीं कि उसे घड़ी-भरके लिए कहीं भी रोक रखे। और, सच्ची बात तो यह है, बाबू, कि चिड़ियाँ अगर मुझे अत्यन्त तुच्छ एक आदमी समझकर अपनी जातसे अलग न छेक देतीं, तो मैं भी उस झरनाके किनारे, उनके हजारों घोंसलोंके बीचमें अपना एक घोंसला बनाकर वहीं रहने लगता; और समुद्रकी लहरें देख-देखकर दिन बिताता रहता।

अमल—मैं अगर चिड़िया होता, तो—

बाबा—तो एक बातकी बड़ी मुश्किल होती। मैंने सुना है, तुमने दहीवालेसे कह रखा है कि बड़े होनेपर तुम दही बेचा करोगे। चिड़ियोंमें तुम्हारा दहीका रोजगार जमता नहीं; बल्कि उलटे तुम नुकसानमें ही रहते।

माधव—बस, अब नहीं। मुझे भी तुमलोग पागल कर दोगे मालूम होता है। मैं चल दिया।

अमल—फूफाजी, मेरा वो दहीवाला आकर लौट गया क्या?

माधव—जायगा नहीं तो क्या! तुम्हारे फकीर-गुरुकी तरह झोली लेकर क्रौञ्चद्वीपकी चिड़ियोंके घोंसलोंमें उड़ते-फिरनेसे तो उसका पेट नहीं चलेगा। वह तुम्हारे लिए भाँड़ भरके दही रख गया है। कह गया है, गाँवमें उसकी भानजीका ब्याह है, इसलिए वह कलमीपाड़ामें नौबतका इन्तजाम करने जा रहा है, उसे बहुत काम है।

अमल—उसने तो कहा था कि मेरे साथ वह अपनी छोटी भानजीका ब्याह कर देगा!

बाबा—तब तो बड़ी मुश्किल हुई! अब?

अमल—उसने कहा था कि वह मेरी गोरी-बहू होगी, बटुआ-सी,

छोटी-मोटी ! उसको नाकमें बुलाक होगी, लाल डोरियाकी साड़ी पहने होगी। गोरी-बहू रोज सवेरे अपने हाथसे काली-गाय दुहके मट्टीके कोरे सकोरेमें मुझे फेन-समेत दूध पिलायेगी, और शामको ग्वालघरमें दीआ दिखाके मेरे पास आकर 'सात-भाई चम्पा'की कहानी सुनायेगी।

बाबा—वाह वाह, बड़ी अच्छी बहू आयेगी तब-तो ! सुनके, मैं फकीर आदमी ठहरा, मेरा भी मन ललचा उठा। सो, बेटा, तुम फिकर न करो, अबकी बार उसका ब्याह हो जाने दो ; मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हें बहूकी जरूरत होगी तो उसके घर किसी दिन भानजियोंकी कमी न होगी।

माधव—जाओ, जाओ। अब मुझसे नहीं रहा जाता। [प्रस्थान

अमल—फकीर, फूफाजी तो चले गये। अब मुझे चुपकेसे बताओ न, डाकघरमें मेरे नामसे राजाकी चिट्ठी आई है ?

बाबा—सुना तो है कि राजाके यहाँसे तुम्हारी चिट्ठी रवाना हो चुकी है। अभी वह रास्तेमें होगी।

अमल—रास्तेमें ? कौनसे रास्तेमें ? वह जो वर्षा हो जानेके बाद आकाश साफ होनेपर बहुत दूर दिखाई देता है उस घने जङ्गलके रास्तेमें ?

बाबा—तब तो तुम सब जानते हो मालूम होता है ! उसी रास्तेसे तो आ रही है तुम्हारी चिट्ठी।

अमल—मैं सब जानता हूं, फकीर ?

बाबा—मालूम तो ऐसा ही होता है। कैसे जाना तुमने ?

अमल—सो मुझे नहीं मालूम। मुझे ऐसा लगता है जैसे आँखोंके सामने में देख रहा होऊँ। मालूम होता है मैं बहुत बार देख चुका हूं, बहुत दिन पहले ; कितने दिन पहले, सो याद नहीं। बताऊँ क्या देख रहा हूं ? मैं देख रहा हूं, राजाका डाकिया पहाड़के ऊपरसे अकेला उतरता चला आ रहा है, बायें हाथमें उसके लालटेन है, कंधेपर चिट्ठीका थैला है। बहुत दिनोंसे बराबर वह उतर हो रहा है। पहाड़के नीचे झरनाका रास्ता जहाँ रुक गया है वहाँ टेढ़ी-मेढ़ी नदीके किनारेसे वह चलता ही चला आ रहा है। नदीके किनारे जो जुआरके खेत हैं, और, नदी और खेतोंके बीच

जो पतली-सी पगडंडी है, उससे वह बराबर चलता आ रहा है। आगे फिर ईखके खेत हैं, और उनके किनारे-किनारे ऊँची मेड़ बहुत दूर तक चली गई है। उस मेड़परसे वह बराबर इधर ही को चला आ रहा है। खेतोंमें झींगुर बोल रहे हैं, नदीके किनारे एक भी आदमी नहीं, सिर्फ चहा-चिड़िया पूँछ फहराती हुई घूम-फिर रही है। मुझे सब दिखाई दे रहा है। डाकिया जितना ही इधरको आ रहा है उतना ही मेरा मन फूला नहीं समा रहा है।

बाबा—तुम्हारी-जैसी नई आँखें तो मेरे नहीं हैं बेटा, फिर भी तुम्हारे देखनेके साथ-साथ मैं भी देख रहा हूँ सब-कुछ।

अमल—अच्छा, फकीर, जिसका वह डाकघर है न, उस राजाको तुम पहचानते हो?

बाबा—जानता नहीं तो क्या! मैं जो उनके यहाँ रोज भिक्षा लेने जाया करता हूँ।

अमल—तब तो बड़ा अच्छा हुआ। अच्छा होनेपर मैं भी उनके पास जाया करूँगा भिक्षा लेने। नहीं जा सकूँगा?

बाबा—बेटा, तुम्हें भिक्षाकी कोई जरूरत नहीं होगी, उन्हें जो कुछ देना है वे खुद आकर तुम्हें यों ही दे जायँगे।

अमल—नहीं नहीं, मैं उनके दरवाजेके सामने सड़कपर खड़ा होकर 'जय हो महाराजकी!' कहके भिक्षा माँगूँगा। मैं करताल बजा-बजाकर नाचूँगा। बड़ा मजा आयेगा!

बाबा—हाँ हाँ, बड़ा अच्छा रहेगा! तुम्हें साथ ले जानेसे मुझे भी भर-पेट भिक्षा मिल जाया करेगी। भिक्षामें तुम क्या माँगोगे?

अमल—मैं कहूँगा कि मुझे तुम अपना डाकिया बना लो। फिर, मैं भी उस डाकियाकी तरह लालटेन हाथमें लिये-हुए घर-घर जाकर चिट्ठी बाँटा करूँगा। मालूम है तुम्हें, मुझे एक आदमीने कहा है कि मैं बड़ा हो जाऊँगा तो वह भिक्षा माँगना सिखा देगा। मैं उसके साथ जहाँ-जी-चाहे भिक्षा माँगता फिरूँगा।

बाबा—कौन था वह?

अमल — छदामी।

बाबा—छदामी कौन ?

अमल—वही जो अन्धा है, लंगड़ा है! वह रोज मेरी खिड़कीके पास आता है। ठीक मेरे-जैसा ही एक लड़का उसे काठके चक्केवाली गाड़ीमें बिठाकर खींचा करता है। मैंने उससे कह दिया है, जब मैं बड़ा हो जाऊँगा तब उसे मैं गाड़ीमें बिठाकर खूब घुमाया करूगा।

बाबा—तब-तो बड़ा मजा होगा, भइया!

अमल—उसीने मुझसे कहा है, कैसे भिक्षा माँगी जाती है, वह मुझे सिखा देगा। फूफाजीसे मैं उसे भीख देनेको कहता हूँ तो वे कहते हैं, 'वह झूठमूठको अन्धा-लंगड़ा बना हुआ है, लोगोंको दिखानेके लिए!' अच्छा, वह झूठा-अन्धा ही सही, पर उसे आँखोंसे दिखाई नहीं देता, इतना तो सच है ?

बाबा—ठीक कह रहे हो, बेटा, उसमें इतनी ही सचाई है कि उसे आँखोंसे दिखाई नहीं देता; फिर चाहे उसे अन्धा कहो या न कहो। पर, उसे जब भिक्षा ही नहीं मिलती तो वह तुम्हारे पास बैठा क्यों रहता है ?

अमल—उसे मैं सुनाया करता हूँ न, कहाँ क्या-क्या है। बेचारेको कुछ दीखता तो है नहीं। तुम जिन-जिन देशोंकी बात सुना जाते हो, मैं सब-की-सब बातें उसे कह सुनाता हूँ। तुमने उस दिन जो मुझसे 'हलके देश'की बात कही थी न, जहाँ जरा-सी छलांग मारते ही पहाड़ पार कर सकते हैं और जहाँ-खुशी जा सकते हैं, उस 'हलके देश'की बात सुनकर वह बड़ा खुश हुआ था। अच्छा, फकीर, उस देशमें किधरसे जाया जाता है ?

बाबा—भीतरकी तरफसे एक ही रास्ता है, बस, पर उसका मिलना बड़ा मुश्किल है।

अमल—वो बेचारा तो अन्धा है, उसे शायद वह रास्ता दिखाई ही न देगा। बेचारा जिन्दगी-भर सिर्फ भीख ही माँगता फिरेगा। इस बातपर उस दिन बेचारा बड़ा दुखी हो रहा था। मैंने उससे कहा, 'भीख माँगनेमें तुम कितना घूमा करते हो खबर है! और-सब इतनी सैर कहाँ कर पाते हैं?'

बाबा—बेटा, घर बैठे रहनेमें ऐसा कौनसा दुःख है ?

अमल—नहीं नहीं, कोई दुःख नहीं। पहले-पहल जब मुझे घरमें बिठा रखते थे तब ऐसा मालूम होता था कि दिन कभी खतम ही न होगा; बादमें जबसे राजाका 'डाकघर' देखा है तबसे इस घरमें बैठे रहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। एक दिन मेरी चिट्ठी आ पहुँचेगी, इस खुशीमें मैं यहाँ चुपचाप बैठा रहता हूँ। पर राजाकी चिट्ठीमें क्या लिखा रहेगा सो तो मुझे नहीं मालूम?

बाबा—नहीं मालूम तो न सही, इससे क्या! तुम्हारा नाम तो उसपर लिखा रहेगा, बस, इतना ही काफी है।

माधव दत्तका प्रवेश

माधव—तुम दोनोंने मिलकर यह क्या मुसीबत खड़ी कर दी है बताओ तो?

बाबा—क्यों, क्या हुआ?

माधव—सुनता हूं, तुमलोगोंने चारों तरफ अफवाह फैला दी है कि राजाने तुमलोगोंको चिट्ठी भेजनेके लिए ही डाकघर खोला है।

बाबा—इससे हुआ क्या?

माधव—हुआ यह कि पञ्चानन चौधरीने गुमनाम चिट्ठी लिखकर यह बात राजाके कानों तक पहुँचा दी है।

बाबा—सभी बातें राजाके कान तक पहुँच जाती हैं, यह यह कौन नहीं जानता!

माधव—तो फिर सम्हलके क्यों नहीं चलते? राजा-बादशाहके नामसे ऐसी बेमतलबकी बातें क्यों किया करते हो? तुमलोग खुद तो डूबोगे ही, साथ-साथ मुझे भी ले डूबोगे?

अमल—फकीर, इससे राजा क्या नाराज होंगे?

बाबा—खामखा वे नाराज क्यों होने लगे! राजा नाराज नहीं होते। हम जैसे फकीरों और तुम जैसे बच्चोंपर वे कैसे नाराज होते हैं, सो मैं देख लूंगा।

अमल—देखो फकीर, आज सवेरेसे मेरी आँखोंपर रह-रहकर अँधेरा-सा

छा जाता है। मालूम होता है, सब सपना है। बिलकुल चुप रहनेकी इच्छा होती है। बात करना सुहाता ही नहीं आज। राजाकी चिट्ठी क्या नहीं आयगी?

बाबा (अमलको हवा करते-हुए)—आयेगी, आयेगी चिट्ठी, आज ही आ जायगी।

वैद्यका प्रवेश

वैद्य—आज कैसी तबीयत है, बच्चे?

अमल—वैद्यजी, तबीयत आज खूब अच्छी मालूम होती है। ऐसा मालूम होता है कि आज सब तकलीफ जाती रही।

वैद्य (अमलसे छिपाकर माधवसे)—आजकी यह हँसी तो अच्छी नहीं मालूम होती। इसका यह कहना कि 'सब तकलीफ जाती रही' यही खराब लक्षण है। हमारे यहाँ चक्रधरने कहा है—

माधव—आपके हाथ जोड़ता हूं वैद्यजी, चक्रधरकी बात न सुनाइये। यह बताइये कि अब इसकी हालत कैसी है?

वैद्य—मालूम होता है अब इसे नहीं रोका जा सकता। मैं तो आपसे साफ मना कर गया था,—पर, मालूम होता है, बाहरकी हवा इसे लग गई।

माधव—नहीं, वैद्यजी, मैंने इसे बड़ी सावधानीसे रखा है। जरा भी बाहर नहीं निकलने दिया, दरवाजे बिलकुल बन्द रखे हैं।

वैद्य—अचानक आज ऐसी जोरकी हवा चलने लगी है कि कुछ पूछो मत। मैं अभी-अभी देख आया हूं, आपके बाहरके दरवाजेमेंसे साँय-साँय हवा चली आ रही है। यह कतई अच्छा नहीं। उस दरवाजेको अच्छी तरह बन्द करवाके ताला लगवा दीजिये। दो-तीन दिन आपके घर कोई नहीं आ सकेगा, यही न, न सही। दो-चार दिनके लिए लोगोंका आना-जाना बिलकुल बन्द कर दीजिये। अगर ऐसा ही कोई आ पहुँचे तो पिछवाड़ेका दरवाजा तो है ही। वह जो सामनेकी खिड़कीमेंसे सूर्यास्तकी आभा आ रही है, उसे भी बन्द कर दीजिये। रोगीको वह सोने नहीं देती।

माधव—अमल आँखें मीचे है, शायद सो रहा है। पर, उसका चेहरा देखनेसे तो मालूम होता है, वैद्यजी, कि जो अपना नहीं, उसे अपने घर लाकर अपना समझकर मैं जो प्यार कर बैठा, सो अच्छा नहीं किया। अब शायद हम इसे नहीं रख सकेंगे।

वैद्य—यह क्या! तुम्हारे घर चौधरी क्यों आ रहा है? यह कैसा उपद्रव! अब मैं चला, भाई साहब। लेकिन तुम उठो, अभी तुरत जाकर दरवाजा बन्द कर आओ। मैं घर जाकर तुरत एक विष-वटिका भेजे देता हूँ, उसे खिला देना; अगर रहनेवाला होगा तो वही बड़ी इसे रोक रखेगी।

[माधव और वैद्य दोनोंका प्रस्थान

चौधरीका प्रवेश

चौधरी—क्या रे छोकड़े!

बाबा (जल्दीसे खड़े होकर)—अरे-रे, चुप, चुप!

अमल—नहीं, फकीर, बोलने दो। तुमने समझा था कि मैं सो रहा हूं! आज मुझे बहुत दूरकी बातें सुनाई दे रही हैं। मालूम होता है, मेरी मा मेरे पिता आज मेरे सिरहाने बैठे बात कर रहे हैं।

माधव दत्तका प्रवेश

चौधरी—क्यों जी, माधव दत्त, सुनते हैं आजकल तुम्हारा बहुत बड़े-बड़े लोगोंसे सम्बन्ध हो गया है?

माधव—आप कहते क्या हैं! मुझसे ऐसा मजाक न कीजिये, चौधरीजी, हमलोग बिलकुल मामूली आदमी ठहरे।

चौधरी—तुम्हारा यह लड़का तो राजाकी चिट्ठीका इन्तजार कर रहा है!

माधव—लड़का है, अभी बच्चा है, उसकी बातपर क्या ध्यान दिया जाता है? अभी समझता ही क्या है, पागल है।

चौधरी—नहीं, नहीं, इसमें बुराईकी क्या बात है। तुम्हारा जैसा लायक घर राजाको और मिलेगा कहाँ! इसीलिए तो, देखते नहीं, ठीक

तुम्हारे दरवाजेके सामने ही राजाने नया डाकघर खुलवा दिया है। अरे ओ छोकड़े, तेरे नामकी चिट्ठी आई है जो।

अमल (चौंककर)—सच्ची?

चौधरी—सच बगैर हुए चारा ही नहीं। तुम्हारे साथ राजाकी दोस्ती ठहरी। (एक कोरा कागज निकालकर) हःहःहःहः, यह रही राजाकी चिट्ठी।

अमल—मेरा मजाक न उड़ाओ, चौधरीजी! फकीर, तुम बताओ न, यही है क्या सचमुच राजाकी चिट्ठी?

बाबा—हाँ बेटा, मैं फकीर हूं, मैं तुमसे कहता हूं, सचमुच यह राजाकी चिट्ठी है।

अमल—पर मुझे जो इसमें कुछ दिखाई ही नहीं देता। मेरी आँखोंमें आज सब-कुछ सफेद दिखाई दे रहा है। चौधरीजी, बताओ न, इस चिट्ठीमें क्या लिखा है?

चौधरी—राजा लिख रहे हैं, 'मैं आज या कल तुम्हारे घरपर आऊंगा, मेरे लिए तुमलोग चूड़ा-चनाका भाग तैयार रखना। राज-भवन अब मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता।' हाः हाः हाः हाः!

माधव (हाथ जोड़कर)—चौधरीजी, दुहाई है, इन-सब बातोंके विषयमें अब आप मजाक न उड़ाइये।

बाबा—मजाक? मजाक कैसा? भला मजाल है इनकी जो मजाक उड़ावें?

माधव—अरे! बाबा, तुम भी पागल हो गये क्या?

बाबा—हाँ, मैं पागल हो गया हूं। इसीसे आज कोरे कागजपर सब देख रहा हूं। राजा लिख रहे हैं, वे खुद अमलको देखने आ रहे हैं, वे अपने राजवैद्यको भी साथ लेते आयेंगे।

अमल—फकीर, सुनो-सुनो, राजाका बाजा बज रहा है, सुन रहे हो?

चौधरी—हःहः हःहः! फकीरको और-भी जरा पागल होने दो, तब तो सुनेंगे!

अमल—चौधरीजी, मैं समझता था कि तुम मुझसे नाराज हो, तुम मुझे प्यार नहीं करते। तुम सचमुच राजाकी चिट्ठी लाओगे, ऐसा मैंने नहीं समझा था। दो, मुझे अपने पाँवोंकी धूल दो, माथेसे लगाऊँ।

चौधरी—अच्छा, तब-तो मालूम होता है, इस लड़केमें सचमुच ही भक्ति-श्रद्धा है। बुद्धि नहीं है, पर मन साफ है।

अमल—अब चौथा पहर हो गया मालूम होता है। सुनो, सुनो, टन टन टन, टन टन टन। संध्या-तारा उग आया, फकीर! मुझे कुछ दिखाई क्यों नहीं दे रहा, बता सकते हो?

बाबा—इनलोगोंने खिड़की बन्द कर दी है न, इसीलिए।

कोई बाहरका दरवाजा खटखटाता है

माधव—कौन है, कौन है? यह कैसा उपद्रव!

बाहरसे—दरवाजा खोलो।

माधव—कौन हो तुमलोग?

बाहरसे—दरवाजा खोलो।

माधव—चौधरीजी, डकैत तो नहीं?

चौधरी—कौन है रे! पंचानन चौधरी हूं मैं! तुमलोगोंको डर नहीं लगता मेरा! देखो तो बाहर जाकर, आवाज थम गई है। पंचानन चौधरीकी आवाज सुनकर डटा रहे, ऐसा माईका लाल जिन्दा है अभी तक! चाहे डकैत हो या—

माधव (खिड़कीसे झाँककर)—दरवाजा तोड़ डाला है, इसीसे आवाज बन्द है।

राजदूतका प्रवेश

राजदूत—महाराज आज रातको पधारेंगे।

चौधरी—ऐं! चौपट हो गया सब!

अमल—कितनी रात बीते, दूत, कितनी रात बीते?

दूत—आज दो-पहर रात बीते।

अमल—जब मेरा मित्र पहरेवाला नगरके सिंहद्वारपर घंटा बजायेगा, टन टन टन, तब ?

दूत—हाँ, तभी। राजाने अपने बालक मित्रको देखनेके लिए सबसे बड़े राजवैद्यको भेजा है।

राजवैद्यका प्रवेश

राजवैद्य—यह क्या! चारों तरफसे बिलकुल बन्द क्यों कर रखा है? खोल दो, खोल दो दरवाजे-जंगले सब खोल दो। (अमलकी देहपर हाथ रखकर) क्यों बेटा, कैसी तबीयत है तुम्हारी ?

अमल—बहुत अच्छी, बहुत अच्छी तबीयत है, राजवैद्यजी महाराज! मुझे अब कोई रोग नहीं, कोई तकलीफ नहीं। ओह, सब खोल दिया, सब तारे दिखाई देने लगे, अँधेरेके ऊपरके सब तारे!

राजवैद्य—आधी रातको जब राजा आयेंगे, तब तुम बिस्तरसे उठकर उनके साथ बाहर जा सकोगे ?

अमल—हाँ, जा सकूँगा, जरूर जा सकूँगा। बाहर जाऊँ तो मैं जी जाऊँ। मैं राजासे कहूंगा, 'इस अन्धकार-आकाशमें तुम मुझे ध्रुवतारा दिखा दो।' मैंने उस तारेको शायद बहुत बार देखा है, पर पहचानमें नहीं आता कि वह कौन-सा है!

राजवैद्य—वे तुम्हें सब दिखा देंगे। (माधवसे) इस कमरेको राजाके आगमनके लिए साफ कराकर फूलोंसे सजा दो। (चौधरीकी तरफ इशारा करके) यह कौन है ? इसे तो इस घरमें नहीं रखा जा सकता।

अमल—नहीं नहीं, राजवैद्यजी, ये मेरे बन्धु हैं। आप जब नहीं आये थे उसके पहले ये ही मेरे लिए राजाकी चिट्ठी लाये थे।

राजवद्य—अच्छा, बेटा, तुम जब कहते हो कि ये तुम्हारे बन्धु हैं तो ये यहीं रहेंगे।

माधव (अमलके कानमें)—बेटा, राजा तुम्हें बहुत प्यार करते हैं, वे स्वयं आ रहे हैं आज। उनसे आज तुम कुछ प्रार्थना करना, वे मनचाही चीज दे सकते हैं। हमारी हालत तो उतनी अच्छी नहीं, तुम तो सब जानते हो!

अमल—सो मैंने सब तय कर रखा है, फूफाजी, उसकी तुम कोई चिन्ता न करो।

माधव—क्या तय किया है, बेटा?

अमल—मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे मुझे अपने डाकघरका डाकिया बना लें, मैं गाँव-गाँव घर-घर जा-जाकर सबको चिट्ठी बाँटा करूँगा।

माधव (अपनी तक़दीर ठोंककर)—हाय री मेरी तक़दीर!

अमल—फूफाजी, राजा आ रहे हैं, उनके लिए क्या-क्या भोग तैयार रखोगे?

दूत—उन्होंने खुद कह दिया है, तुम्हारे घर वे चूड़ा-चनाका भोग लेंगे।

अमल—चूड़ा-चना! चौधरीजी, तुमने तो पहले ही कह दिया था! राजाकी सब खबर तुम्हें मालूम रहती है। हमलोग तो कुछ-भी नहीं जानते थे।

चौधरी—मेरे घरपर अगर आदमी भेज दो, तो राजाके लिए कुछ अच्छी-अच्छी—

राजवैद्य—कोई जरूरत नहीं। अब तुमलोग सब स्थिर होकर बैठो। आ रही है, आ रही है, नींद आ रही है बच्चेको। मैं इसके सिरहाने बैठूंगा, इसे नींद आ रही है! दिआ बुझा दो, अब सिर्फ आकाशके तारोंका ही प्रकाश आने दो। बच्चेको नींद आ गई, सो गया बेचारा!

माधव (बाबाके प्रति)—बाबा, तुम ऐसे पत्थरकी मूर्तिकी तरह हाथ जोड़कर चुपचाप क्यों बैठे हो? मुझे डर लगता है। यह जो-कुछ देख रहा हूँ, ये-सब क्या अच्छे लक्षण हैं? ये लोग मेरे घरमें अँधेरा क्यों किये दे रहे हैं? तारोंके उजालेसे मेरा क्या होगा?

बाबा—चुप रहो अविश्वासी! बात न करो।

सुधाका प्रवेश

सुधा—अमल !

राजवैद्य—अमल सो गया है।

सुधा—मैं जो उसके लिए फूल लाई हूँ ! उसके हाथमें मैं नहीं दे सकती ?

राजवैद्य—अच्छा, दो मुझे दे दो।

सुधा—अमल कब जगेगा ?

राजवैद्य—अभी, जब राजा आकर इसे पुकारेंगे।

सुधा—तब तुमलोग मेरी एक बात इसके कानमें कह दोगे ?

राजवैद्य—क्या ?

सुधा—कहना कि 'सुधा तुम्हें भूली नहीं है।'

नन्दिनी

नाट्य-परिचय

इस नाटकका आधार है सत्य। ऐसी घटना कहीं हुई है या नहीं ऐतिहासिकोंपर इसके प्रमाण-संग्रहका भार दिया गया तो पाठकोंको वञ्चित रहना पड़ेगा। इतना कहना ही काफी है कि कविके ज्ञान-विश्वासके अनुसार यह सम्पूर्ण सत्य है।

घटना-स्थानका वास्तविक नाम क्या है, इस विषयमें भौगोलिकोंमें मतभेद हो सकता है। किन्तु सभी जानते हैं कि इसका चालू नाम 'यक्षपुरी' है। पण्डितोंका कहना है कि पौराणिक यक्षपुरीमें धन-देवता कुबेरका स्वर्ण-सिंहासन है। किन्तु यह नाटक कतई पौराणिक युगका नहीं; और न इसे रूपक ही कहा जा सकता है। जिस जगहकी बात हो रही है वहाँ जमीनके नीचे यक्षका धन गड़ा हुआ है। उसकी खबर पाकर लोगोंने पातालमें सुरंग खोदना शुरू कर दिया है; और प्यारसे उसका नाम रखा है 'यक्षपुरी'। इस नाटकमें यहाँके सुरंग खोदनेवालोंके साथ यथासमय हमारा परिचय होगा।

यक्षपुरीके राजाके नामके सम्बन्धमें ऐतिहासिकोंमें एकमत होगा, इसकी कोई आशा नहीं करता। हम इतना-भर जानते हैं कि उनका चालू नाम मकरराज है। यथासमय लोगोंके मुँहसे इस नामकरणका कारण समझमें आ जायगा।

राज-महलके बाहरकी दीवारमें एक जालका जंगला है। उस जालके भीतरसे मकरराज अपनी इच्छानुसार आदमियोंके साथ मिलते-जुलते हैं। क्यों उनका ऐसा अद्भुत व्यवहार है, इस विषयमें नाटकके पात्र-पात्रियोंने जो-कुछ बातचीत की है उससे ज्यादा हम कुछ नहीं जानते।

इस राज्यके जो सरदार हैं वे योग्य व्यक्ति हैं, जिनको कि लोग बहुदर्शी कहते हैं। राजाके वे अन्तरंग पारिषद हैं। उनकी सतर्क व्यवस्थाके कारण खान-खोदनेवालोंके काममें त्रुटि नहीं हो पाती ; और यक्षपुरीकी निरन्तर उन्नति होती रहती है। यहाँके चौधरी किसी समय खुदाईका काम करते थे, अपने गुणसे उनकी पदोन्नति हुई है ; और उन्हें उपाधियाँ भी मिली हैं। कार्य-पटुतामें वे अनेक विषयोंमें सरदारोंसे भी बढ़ गये हैं। यक्षपुरीके विधि-विधानको अगर कविकी भाषामें 'पूर्णचन्द्र' कहा जाय, तो उसके कलंक-विभागका भार प्रधानतः चौधरियोंपर ही पड़ता है।

इनके सिवा, एक गुसाँईजी हैं, जिन्होंने नाम ग्रहण किया है भगवानका, किन्तु अन्न ग्रहण करते हैं सरदारोंका। उनके द्वारा यक्षपुरीका बहुत-कुछ उपकार होता है।

मल्लाहोंके जालमें दैवसे कभी-कभी अखाद्य-जातिके जलचर जीव आ फँसते हैं। उनसे पेट भरने या अंटी भरनेका काम तो होता ही नहीं, ऊपरसे वे जालको तोड़-ताड़ और जाते हैं। इस नाटकके घटनाजालमें 'नन्दिनी' नामकी एक लड़की ठीक वैसे ही आ पड़ी है। मकरराज जिस जालकी ओटमें रहते हैं उस जालको यह लड़की शायद ही टिकने दे!

नाटकके आरम्भमें ही, राजाके जालके जंगलेके बाहरी बरामदेमें, इस लड़कीसे भेंट होगी। जाल कैसा है, उसका स्पष्ट वर्णन करना असम्भव है। जो उसके कारीगर हैं वे ही उसका भेद जानते हैं।

नाट्य-घटनाका जितना हिस्सा हमारे देखनेमें आता है, वह सबका सब इस राज-महलके जंगलेके बाहरी बरामदेका दृश्य है। भीतर क्या हो रहा है, सो हम बहुत ही कम जान पाते हैं।

नन्दिनी

यह नाटक जिस नगरीको आश्रय किये-हुए है उसका नाम है यक्षपुरी। यहाँके मजदूर जमीनके भीतरसे सोना निकालनेका काम करते हैं। यहाँका राजा एक अत्यन्त जटिल आवरणके भीतर रहता है। राज-महलका वह जालका आवरण ही इस नाटकका एकमात्र दृश्य है। उस आवरणके बाहर सारी घटनाएँ हो रही हैं।

नन्दिनी और मजदूर बालक किशोर

किशोर—नन्दिनी, नन्दिनी, नन्दिनी!

नन्दिनी—मुझे तू ऐसे क्यों पुकारा करता है, किशोर? मुझे क्या कानोंसे सुनाई नहीं देता?

किशोर—सुनाई देता है सो तो मैं जानता हूं, लेकिन मुझे जो ऐसे पुकारनेमें अच्छा लगता है। और फूल चाहिए तुम्हें? तो ले आऊँ जाकर?

नन्दिनी—जा जा, अभी लौट जा, देर मत कर।

किशोर—सारे दिन तो जमीन खोद-खोदकर सोना निकाला करता हूं, उसीमेंसे जरा-सा समय चुराकर तुम्हारे लिए फूल ले आता हूं तो जीमें जी आ जाता है।

नन्दिनी—पर, मालूम हो जायगा तो वे तुझे सजा जो देंगे!

किशोर—तुम तो कहती थीं कि लाल-कनेर तुम्हें चाहिए-ही-चाहिए! मुझे खुशी इस बातकी है कि यहाँ वह फल आसानीसे नहीं मिलता। बहुत खोजनेपर एक जगह, यहाँके जंजालके पीछे सिर्फ एक पेड़ दिखाई दिया है।

नन्दिनी—पेड़ तू मुझे दिखा दे, मैं खुद जाकर फूल तोड़ लाया करूँगी।

किशोर—ऐसी बात न कहो, नन्दिनी। नन्दिनी, तुम निष्ठुर न होओ। उस पेड़को छिपा ही रहने दो, मेरी एकमात्र गुप्त बातकी तरह। विशु तुम्हें गीत सुनाता है, वह उसका अपना गीत है। अबसे मैं तुम्हें फूल भेंट किया करूँगा, वह फूल मेरा अपना ही फूल होगा।

नन्दिनी—पर, यहांके जानवर जो तुम्हे सजा देते हैं! उससे मेरी जो छाती फटती है!

किशोर—उसी व्यथासे तो मेरे फूल और-भी ज्यादा मेरे होकर खिलते हैं। मेरे दुःखकी पूँजी तो वही है!

नन्दिनी—पर, तुमलोगोंके इस दुःखको मैं कैसे सहूं?

किशोर—दुःख किस बातका? एक दिन तुम्हारे लिए मैं प्राण दूंगा, नन्दिनी, बार-बार मैं यही सोचा करता हूं।

नन्दिनी—तुमने तो मुझे इतना दिया, किशोर, पर मैं क्या दूं बताओ?

किशोर—तुम मुझे वचन दो, नन्दिनी, कि मेरे ही हाथसे रोज सवेरे तुम फूल लिया करोगी।

नन्दिनी—अच्छा, दिया वचन। पर, जरा सम्हलकर चलना।

किशोर—नहीं, मैं सम्हलके नहीं चलूंगा, नहीं चलूंगा। उनलोगोंकी मारके सामने ही मैं तुम्हें रोज फूल दे जाया करूंगा।

अध्यापकका प्रवेश

अध्यापक—जाओ मत, नन्दिनी, मुड़के देखो।

नन्दिनी—क्या है अध्यापक?

अध्यापक—क्षण-क्षणमें ऐसे चौंकाकर क्यों चली जाती हो? जब मनको हिला ही जाती हो तो जरा जवाब देनेमें क्या बिगड़ जायगा? जरा ठहरो, दो बात तो कर लूं।

नन्दिनी—मुझसे तुम्हें क्या जरूरत?

अध्यापक—जरूरतकी ही बात कहती हो तो वह देखो! खानके मजदूर

पृथ्वीकी छाती चीरकर जरूरतका बोझ सरपर लादे कीड़ोंकी तरह सुरंगके भीतरसे ऊपर चले आ रहे हैं। इस यक्षपुरीमें हमारा जो-कुछ धन है सब उस धूल-मिट्टीकी नाड़ीका धन है, सोना! किन्तु सुन्दरी, तुम जो सोना हो सो तो धूल-मिट्टीकी नहीं हो, प्रकाशका सोना हो तुम! जरूरतके बन्धनमें उसे कौन बाँध सकता है?

नन्दिनी—बार-बार वही एक ही बात कहते हो तुम। मुझे देखकर तुम्हें इतना आश्चर्य क्यों होता है अध्यापक?

अध्यापक—सवेरे फूलोंके बागमें जो प्रकाश आता है उसमें आश्चर्य नहीं है, किन्तु पक्की दीवारकी सँधमेंसे जो उजाला आता है उसकी बात ही और है। यक्षपुरीमें तुम वैसी ही अकस्मात-प्रकाश हो! तुम्हीं भला यहाँकी बात क्या सोचा करती हो बताना?

नन्दिनी—मैं तो देखकर दंग हूं, सारा शहर जमीनके अन्दर मुँह डालकर अँधेरेमें न-मालूम क्या ढूंढ़ता फिर रहा है! पातालमें सुरंग खोदकर तुमलोग यक्षका धन निकाले ला रहे हो। वह तो बहुत युगोंका मरा-हुआ धन है! पृथ्वीने उसे समाधि दे दी थी।

अध्यापक—हम जो उस मरे-हुए धनकी शव-साधना करते हैं! उसके प्रेतको वश करना चाहते हैं। सोनेके ढेलोंको बाँधके वश कर लेनेसे दुनिया हमारी मुट्ठीमें आ जायगी।

नन्दिनी—उसपर फिर अपने राजाको तुमलोगोंने एक विचित्र जालकी दीवारसे ढक रखा है, कहीं किसीको मालूम न हो जाय कि वह भी आदमी है, इसीलिए न! तुमलोगोंकी उस सुरंगका अँधेरेका ढकना फेंककर उसमें उजाला उँड़ेल देनेकी तबीयत होती है; और जी चाहता है कि उस भद्दे जालको तोड़कर भीतरके आदमीको बचा लूं।

अध्यापक—हमारे मुरदा-धनके प्रेतमें जितनी भयङ्कर शक्ति है, उतना ही भयंकर प्रताप है हमारे मनुष्योत्तर राजामें!

नन्दिनी—ये-सब तुमलोगोंकी अपनी गढ़ी-हुई बातें हैं।

अध्यापक—गढ़ी-हुई तो हैं ही। नंगेका कोई परिचय नहीं, कपड़ोंसे

ही कोई राजा है तो कोई रंक। आओ, मेरे घरमें आओ। तुम्हें तत्त्वकी बात समझानेमें मुझे बड़ा आनन्द आता है।

नन्दिनी—तुम्हारे खान-खोदनेवाले मजदूर जैसे खान खोदते-खोदते जमीनमें समाये जा रहे हैं, तुम भी वैसे ही पोथियोंमें गड्ढा खोदते चले जा रहे हो। मुझसे बात करके समयका फिजूल-खर्च क्यों करना चाहते हो?

अध्यापक—हमलोग ठोस निरवकाशके गड्ढेके पतंगे हैं, घने कामके अन्दर घुसे हुए हैं; और तुम हो मुक्त समयके मुक्ताकाशकी संध्या-तारा, तुम्हें देखकर हमारे पंख चंचल हो उठते हैं। आओ मेरे घरमें, तुम्हारे साथ मुझे जरा समय नष्ट कर लेने दो।

नन्दिनी—नहीं, नहीं, अभी नहीं। अभी मैं तुम्हारे राजाको देखने आई हूं, जालके भीतर जाकर उसे देखूंगी।

अध्यापक—जालके अन्दर तुम नहीं जा सकतीं, वहाँ घुसने नहीं देंगे।

नन्दिनी—मैं जालकी बाधा नहीं मानती। मैं आई हूं घरके भीतर घुसनेके लिए।

अध्यापक—जानती हो, नन्दिनी, मैं भी एक जालके पीछे रहता हूं। वहाँ मनुष्यका बहुत-कुछ छीज चुका है, सिर्फ पण्डित-भर जाग रहा है। हमारे राजा जैसे भयङ्कर हैं, मैं भी वैसा ही भयङ्कर पण्डित हूं।

नन्दिनी—मेरे साथ मजाक कर रहे हो तुम? तुम तो कतई भयंकर नहीं मालूम होते। मैं तुमसे एक बात पूछती हूं, ये लोग मुझे यहाँ ले आये, पर रंजनको साथ क्यों नहीं लाये?

अध्यापक—हर चीजको टुकड़े-टुकड़े करके लाना ही इनका दस्तूर है। किन्तु मैं पूछता हूं, यहांके मुरदा-धनके अन्दर तुम अपने प्राणोंके धनको क्यों लाना चाहती हो?

नन्दिनी—मेरा रञ्जन यहाँ आ जाय तो इनके मुरदा-पिञ्जरके भीतर प्राण नाच उठेंगे!

अध्यापक—एक नन्दिनीको लेकर ही यहांके सरदार बुद्धि खो बैठे हैं, उसपर रञ्जनके आ जानेसे इनकी क्या दशा होगी?

नन्दिनी—ये लोग नहीं जानते कि वे खुद ही कैसे अद्भुत हैं। इनके अन्दर विधाता अगर सहसा एक जोरकी हँसी हँस दें तो इनकी हड्डी-पसली सब चकनाचूर हो जा सकती है। रञ्जन विधाताकी वही हँसी है।

अध्यापक—देवताकी हँसी सूर्यका प्रकाश है, उससे बरफ गल जाती है, पर पत्थर नहीं टलता। हमारे सरदारको डिगानेके लिए काफी जोर चाहिए।

नन्दिनी—हमारे रञ्जनका जोर तुम्हारी शंखिनी-नदीके समान है। उस नदीकी तरह ही वह हँसना भी जानता है और तोड़ना भी। अध्यापक, मैं तुम्हें आजकी अपनी एक गुप्त खबर सुनाती हूं। आज रंजनके साथ मेरी मुलाकात होगी।

अध्यापक—कैसे जाना ?

नन्दिनी—होगी, होगी, आज उससे मेरी जरूर भेंट होगी। खबर आई है।

अध्यापक—सरदारोंकी आँख बचाकर खबर आयेगी किस रास्तेसे ?

नन्दिनी—जिस रास्तेसे वसन्तके आनेकी खबर आती है उस रास्तेसे। आज उसमें लग गया है आकाशका रंग, पवनकी लीला।

अध्यापक—इसके मानी हैं आकाशके रंगमें पवनकी लीलामें उड़ती-हुई खबर आई है।

नन्दिनी—जब रंजन आयेगा तब दिखा दूँगी कि उड़ती-हुई खबर कैसे जमीनपर आ पहुँचती है।

अध्यापक—रंजनका जिक्र छिड़नेपर नन्दिनीकी जबान रुकना ही नहीं चाहती। खैर जाने दो, मेरे पास तो वस्तुतत्त्व-विद्या है, उसके गह्वरमें घुसा जाता हूं मैं, अब बाहर रहनेका साहस नहीं होता। (थोड़ी दूर जाकर वापस आ जाता है) नन्दिनी, एक बात पूछता हूं तुमसे, यक्षपुरीसे तुम्हें डर नहीं लगता ?

नन्दिनी—डर क्यों लगने लगा ?

अध्यापक—ग्रहणके सूर्यसे जानवर डरते हैं, पूर्ण सूर्यसे नहीं डरते।

यक्षपुरी ग्रहण-युक्त पुरी है। सोनेके राहुने उसे ग्रस लिया है। वह खुद पूर्ण नहीं है, किसीको पूरा रखना भी नहीं चाहती। मैं तुमसे कहता हूं, यहाँ तुम मत रहो। तुम्हारे चले जानेसे ये गड्ढे हमारे सामने और भी ज्यादा मुँह बा देंगे; फिर भी कहता हूं, भाग जाओ यहाँसे। जहाँके लोग दस्युवृत्ति करके मा वसुन्धराके आँचलको फाड़-फाड़कर टुकड़े-टुकड़े नहीं करते, वहाँ रंजनको लेकर तुम सुखसे रहो। (कुछ दूर जाकर फिर लौट पड़ता है) नन्दिनी, तुम्हारे दाहने हाथमें यह जो लाल-कनेरका कंकण है, इसमेंसे एक फूल तोड़कर दे सकती हो मुझे ?

नन्दिनी—क्यों, क्या करोगे तुम इसका ?

अध्यापक—कितनी ही बार सोचा है मैंने, तुम जो लाल-कनेरके गहने पहनती हो, उसके कुछ-न-कुछ मानी जरूर हैं।

नन्दिनी—मैं तो नहीं जानती, क्या मानी हैं।

अध्यापक—शायद तुम्हारे भाग्यपुरुष जानते हैं। इसकी रक्त-आभामें कोई भयका रहस्य निहित है, इसमें सिर्फ माधुर्य ही हो सो बात नहीं।

नन्दिनी—मेरे अन्दर भय ?

अध्यापक—सुन्दरके हाथमें रक्तकी तूलिका दी है विधाताने। मालूम नहीं, लाल रंगसे तुम क्या लेख लिखने आई हो! मालती थी, मल्लिका थी, चमेली भी थी; किन्तु सब छोड़कर इस फूलको तुमने क्यों चुना ? जानती हो, मनुष्य बिना-जाने इसी तरह अपना भाग्य चुन लेता है।

नन्दिनी—रंजन मुझे कभी-कभी प्यारसे कहता है लाल-कनेर। मालूम नहीं मुझे क्यों ऐसा लगता है कि मेरे रंजनके प्यारका रंग है लाल! उस रंगको आज मैंने गलेमें पहना है, हृदयमें पहना है, हाथोंमें पहना है।

अध्यापक—नन्दिनी, इसमेंसे एक फूल मुझे दो, सिर्फ क्षण-भरका दान, इस रंगके तत्त्वको समझनेकी कोशिश करूँगा मैं।

नन्दिनी—यह लो। आज रंजन आयेगा, उसी आनन्दमें मैं तुम्हें यह दे रही हूं।

[अध्यापकका प्रस्थान

खान-मजदूर गोकुलका प्रवेश

गोकुल—एक बार इधर मुँह तो करो, देखूं। तुम्हें समझ ही न सका आज तक। कौन हो तुम ?

नन्दिनी—मुझे जो देख रहे हो, उसके सिवा मैं और कुछ भी नहीं। समझनेकी तुम्हें जरूरत क्या है ?

गोकुल—बगैर समझे अच्छा नहीं लगता। यहाँ राजाने तुम्हें किस कामके लिए बुलाया है ?

नन्दिनी—बिना कामके लिए।

गोकुल—कोई मन्तर जानती हो तुम! उसमें तुमने फँसा लिया है सबको। सत्यानासिनी हो तुम! तुम्हारे इस सुन्दर चेहरेको देखकर जो भुलावेमें आयेंगे वे मरेंगे। देखूं देखूं, तुम्हारी माँगके नीचे यह क्या है ?

नन्दिनी—लाल-कनेरकी मंजरी।

गोकुल—इसके मानी ?

नन्दिनी—इसके कुछ मानी ही नहीं।

गोकुल—मेरा तुमपर जरा भी विश्वास नहीं। भीतर-ही-भीतर कुछ ठान रखा है तुमने! आजका दिन खतम होनेके पहले ही तुम कोई-न-कोई आफत ढाओगी। इसीसे इतनी सजी-धजी फिरती हो। भयंकरी, अरी ओ भयंकरी!

नन्दिनी—मैं तुम्हें इतनी भयंकर क्यों दिखाई दे रही हूं ?

गोकुल—तुम्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे कोई लाल-लौकी मशाल देख रहा होऊं! जाऊं, जाऊं, बेवकूफोंको समझा दूं कि 'सब सावधान, सावधान, होशियार!' [प्रस्थान

नन्दिनी (जालके दरवाजेको हिलाती हुई)—सुन रहे हो ?

नेपथ्यसे—नन्दा, मैं सुन रहा हूँ। पर, बार-बार तुम मुझे बुलाओ मत, मेरे पास समय नहीं, जरा भी समय नहीं।

नन्दिनी—आज खुशीसे मेरा मन फूला नहीं समाता। इस खुशीको लेकर मैं तुम्हारे घरमें तुम्हारे पास आना चाहती हूँ।

नेपथ्यसे—नहीं, घरके अन्दर नहीं; जो कुछ कहना हो, बाहरसे कहो।

नन्दिनी—तुम्हारे लिए आज मैं कुन्द-पुष्पकी माला गूँथकर लाई हूँ, कमलपत्रसे ढककर।

नेपथ्यसे—खुद पहन लो।

नन्दिनी—मुझे अच्छी नहीं लगेगी, मेरी माला है लाल-कनेरकी।

नेपथ्यसे—मैं पर्वत-शिखरके समान हूँ, शून्यता ही मेरी शोभा है।

नन्दिनी—पर्वत-शिखरकी छातीपर भी झरना झरता है, तुम्हारे गलेमें माला लटकेगी। जाल खोल दो, मैं भीतर आऊँगी।

नेपथ्यसे—नहीं, मैं भीतर नहीं आने दूंगा। तुम्हें क्या कहना है, जल्दी कहो। मेरे पास समय नहीं है।

नन्दिनी—गीत सुन रहे हो? दूर कोई गा रहा है।

नेपथ्यसे—कैसा गीत?

नन्दिनी—पौषका गीत है। फसल पक चुकी है, काटना है, उसीकी पुकार है।

गीत

आओ आओ आओ, तुमको पौष मास है रहा पुकार,
आओ हर्ष हृदयमें धार।
पकी फसलसे उथल रहा है उसका भरा-पुरा भण्डार,
बलि-बलि जाऊँ बारम्बार।

नन्दिनी—देखते नहीं, पौषकी धूपने पके धानका लावण्य आकाशमें कैसा फैला दिया है?

मदिर पवनसे मत्त हुई अब
धान्य-क्षेत्रमें दिग्वधुएँ सब,
तपन-किरणका स्वर्ण बिखरकर फैला पृथ्वीके अंचलपर,
बलि-बलि जाऊँ बारम्बार।

नन्दिनी--तुम भी बाहर निकल आओ, राजा, तुम्हें खेतोंमें ले चलूं।

खेतोंका वंशी-रव सुनकर हर्षित अम्बर हुआ अपार,
कौन रहेगा आज गेहमें? खोलो खोलो खोलो द्वार।

नेपथ्यसे--मैं खेतोंमें जाऊंगा? वहाँ मैं किस काम आऊंगा?

नन्दिनी--खेतका काम तुम्हारी यक्षपुरीके कामसे बहुत सहज है।

नेपथ्यसे--सहज काम ही मेरे लिए कठिन है। सरोवर क्या झरनाकी तरह फेनके नूपुर पहनकर नाच सकता है? जाओ जाओ, ज्यादा बात न करो, समय नहीं है।

नन्दिनी--अद्भुत तुम्हारी शक्ति है। जिस दिन तुमने मुझे अपने भण्डारमें घुसने दिया था, उस दिन तुम्हारी सोनेकी ईंटें देखकर मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ; किन्तु जिस विपुल शक्तिसे तुम उन्हें अनायास ही पहाड़की तरह सजा रहे थे उसे देखकर मैं मुग्ध हो गई थी। फिर भी, मैं कहूंगी, सोनेके पिण्ड क्या तुम्हारे इन हाथोंके छन्दका वैसा साथ दे सकते हैं जैसा धानके खेत दे सकते हैं? अच्छा, राजा, एक बात तो बताओ, दिन-रात जमीनके भीतरके इस मुरदा धनको हिलाने-डुलानेमें तुम्हें डर नहीं लगता?

नेपथ्यसे--क्यों, डर किस बातका?

नन्दिनी--प्राणवन्त पृथ्वी अपने जीवनकी चीज स्वयं ही प्रसन्न होकर देती है। किन्तु, जब तुम उसकी छाती चीरकर मरी-हुई हड्डियोंको ऐश्वर्य समझकर निकाल लाते हो, तब अन्धकारमेंसे मानो किसी अन्धे राक्षसका अभिशाप ले आते हो। देखते नहीं, यहाँके सभी मानो क्रुद्ध हो रहे हैं, कोई सन्देह करते हैं तो डरते हैं?

नेपथ्यसे--अभिशाप! अभिशाप कैसा?

नन्दिनी--हाँ, अभिशाप! खूनखराबी और छीनाझपटीका अभिशाप।

नेपथ्यसे--आपकी बात तो मुझे नहीं मालूम। इतना जानता हूँ कि वहाँसे मैं अपनी शक्ति ले आता हूँ। मेरी शक्तिसे तुम खुश होती हो, नन्दिनी?

नन्दिनी—बहुत खुशी होती है मुझे। इसीसे तो कहती हूँ, तुम बाहर निकल आओ, जमीनपर पैर रखो, जमीन खुश हो उठेगी !

जागा है प्रकाश हर्षित-मन
धान्य-बालियोंपर लख हिम-कण,
नहीं समाता धरा-हृदयमें उमड़ा है आनन्द अपार,
बलि-बलि जाऊँ बारम्बार।

नेपथ्यसे—नन्दिनी, तुम क्या जानती हो, विधाताने तुम्हें भी रूपकी मायाकी ओटमें अद्भुत सुन्दर कर रखा है ? उस मायाकी ओटमेंसे छीनकर मैं तुम्हें अपनी मुट्ठीमें पाना चाहता हूँ, पर किसी भी तरह पकड़ नहीं पा रहा हूँ। मैं तुम्हें उलट-पुलटकर देखना चाहता हूँ, अगर ऐसा न कर सका तो तोड़-मरोड़कर चकनाचूर कर डालना चाहता हूँ।

नन्दिनी—यह तुम क्या कह रहे हो ?

नेपथ्यसे—तुम्हारी इस लाल-कनेरकी आभाको छानकर अपनी आँखोंमें उसका अंजन क्यों नहीं लगा सकता जानती हो ? मामूली-सी कुछ पँखड़ियोंने अपना आँचल ढककर आड़ कर रखी है इसलिए। इसी तरहकी बाधा तुम्हारे अन्दर है, कोमल होनेसे ही तुम कठिन हो। अच्छा, नन्दिनी, मुझे तुम क्या समझती हो, साफ-साफ बताओ तो ?

नन्दिनी—सो और-किसी दिन बताऊँगी। आज तो तुम्हारे पास समय नहीं है, आज जाती हूँ।

नेपथ्यसे—नहीं नहीं, जाओ मत, बताती जाओ, तुम मुझे क्या समझती हो ?

नन्दिनी—कितनी बार कह चुकी हूँ, तुम मुझे बड़े आश्चर्यमय मालूम होते हो। तुम्हारी सुदृढ़ बाहुओंमें प्रचण्ड बल फूला नहीं समाता, आँधीके पहलेके मेघोंकी तरह। देखकर मेरा मन नाचने लगता है।

नेपथ्यसे—रंजनको देखकर जो तुम्हारा मन नाचने लगता है वह भी क्या—

नन्दिनी—उस बातको छोड़ो, अभी तुम्हारे पास समय जो नहीं है !

नेपथ्यसे—है समय । सिर्फ इतनी-सी बात बताती जाओ ?

नन्दिनी—उस नाचका ताल कुछ और ही है, तुम समझोगे नहीं ।

नेपथ्यसे—समझूंगा । समझना चाहता हूँ मैं ।

नन्दिनी—सब बात ठीकसे समझा नहीं सकती, जाती हूँ मैं ।

नेपथ्यसे—जाओ मत, बताओ, मैं तुम्हें अच्छा लगता हूँ या नहीं ?

नन्दिनी—हाँ, अच्छे लगते हो ।

नेपथ्यसे—रंजनकी तरह ?

नन्दिनी—घूम-फिरकर वही एक बात ! ये-सब बातें तुम समझोगे नहीं ।

नेपथ्यसे—कुछ-कुछ समझता हूँ । मैं जानता हूँ रंजन और मुझमें क्या फरक है । मेरे अन्दर सिर्फ जोर ही है, और रंजनमें है जादू !

नन्दिनी—जादू तुम किसे कहते हो ?

नेपथ्यसे—समझाऊँ ? जमीनके नीचे पत्थर लोहा और सोनेके पिण्ड हैं, वहाँ है जोरकी मूर्ति । और उसके ऊपर है कच्ची मिट्टी, उसपर घास उगती है, फूल खिलते हैं ; वहाँ है जादूका खेल । दुर्गममेंसे मैं हीरा लाता हूँ, मानिक लाता हूँ । किन्तु सहजमेंसे मैं उस प्राणवन्त जादूको छीनकर नहीं ला सकता ।

नन्दिनी—तुम्हारे पास इतना है, फिर भी तुम ऐसे लोभीकी तरह बात क्यों करते हो ?

नेपथ्यसे—मेरे पास जो-कुछ है वह सब बोझा बना हुआ है । सोनेको जमा-जमाकर स्पर्शमणि नहीं बनाया जा सकता ; शक्ति चाहे जितनी भी बढ़ा लूं, यौवनमें नहीं पहुँच सकता । इसीसे पहरा बिठाकर तुम्हें बाँधना चाहता हूँ । रंजनकी तरह यौवन होता तो मैं तुम्हें बिना बाँधे ही बाँध सकता था । मेरा तो जीवन ही बीत गया इसी तरह बन्धनकी रस्सीमें गाँठ देते-देते । हाय रे, और-सब बाँधनेमें आता है, सिर्फ आनन्द ही नहीं आता ।

नन्दिनी—तुमने तो अपनेको ही जालमें बाँध लिया है, फिर क्यों इतने फड़फड़ा रहे हो, समझमें नहीं आता ?

नेपथ्यसे—तुम नहीं समझ सकतीं। मैं विशाल मरुभूमि हूँ, तुम्हारी जैसी एक छोटी-सी घासकी तरफ हाथ बढ़ाये हुए हूँ, मैं तप्त हूं, मैं रिक्त हूं, मैं श्रान्त हूं, मुझमें दम नहीं। तृष्णाके दाहसे इस मरुने कितनी उर्वरा भूमिको चाट लिया है, कोई ठीक है! इससे मरु अपनी परिधि ही बढ़ाता जा रहा है, किन्तु उस जरा-सी दुर्बल घासके अन्दर जो प्राण हैं उसे वह अपना नहीं बना सकता।

नन्दिनी—तुम जो अपनेको इतने थके-हुए बताते हो, तुम्हें देखकर तो ऐसा नहीं मालूम होता। मैं तो तुम्हारा प्रचण्ड बल ही देख रही हूं।

नेपथ्यसे—नन्दिनी, एक दिन बहुत दूर देशमें अपने ही जैसा एक थका-हुआ पहाड़ देखा था मैंने। बाहरसे कुछ समझ ही न सका कि उसके सारेके सारे पत्थर भीतर-ही-भीतर व्यथित हो उठे हैं। एक दिन, आधी रातके गहरे सन्नाटेमें भीषण शब्द सुना, ऐसा लगा जैसे किसी दैत्यका दुःस्वप्न भीतर-ही-भीतर घुमड़-घुमड़कर अकस्मात् भङ्ग हो गया हो। सवेरे उठकर देखा कि पहाड़ भूकम्पके एक ही झटकेमें जमीनमें समा गया है! शक्तिका भार अपने अगोचरमें कैसे अपनेको ही पीस डालता है, उस पहाड़की हालत देखकर मैं इस बातको खूब अच्छी तरह समझ गया। और, तुम्हारे अन्दर एक चीज देख रहा हूं, वह है उससे बिलकुल उलटी।

नन्दिनी—मेरे अन्दर क्या देख रहे हो?

नेपथ्यसे—विश्वकी बाँसुरीमें नाचका जो छन्द बज रहा है वही छन्द देख रहा हूं मैं तुममें!

नन्दिनी—समझ नहीं सकी।

नेपथ्यसे—उस छन्दसे वस्तुका विपुल भार हलका हो जाता है। उस छन्दसे ग्रह-नक्षत्रोंका दल भिखारी नट-बालकके समान आकाशमें नाचता फिरता है। उसी नाचके छन्दसे, नन्दिनी, तुम इतनी सहज हो, इतनी सुन्दर हो। मेरी तुलनामें तुम कितनी-सी हो, फिर भी, तुमसे मैं ईर्षा करता हूँ!

नन्दिनी—तुमने अपनेको और-सबोंसे छिपाकर अपनेको वंचित कर रखा है। तुम सहज होकर पकड़ाई क्यों नहीं देते?

नेपथ्यसे—अपनेको गुप्त रखकर मैं विश्वके बड़े-बड़े भण्डारोंसे बड़ी-बड़ी चीजें चोरी करने बैठा हूँ। किन्तु जो दान विधाताकी मुट्ठीमें बन्द है, उस दान तक तुम्हारी चम्पा-कली-सी उंगली जैसे पहुंच सकती है, मेरा सम्पूर्ण शारीरिक बल वैसे उसके पास तक फटक भी नहीं सकता। फिर भी, विधाताकी उस बन्द मुट्ठीको मैं खोलूंगा ही।

नन्दिनी—तुम्हारी ये-सब बातें मेरी कुछ समझमें नहीं आतीं। मैं जाती हूं।

नेपथ्यसे—अच्छा, जाना ; किन्तु, इस जालके बाहर मैं अपना हाथ बढ़ाये देता हूँ, तुम अपना हाथ एक बार इसपर रखो।

नन्दिनी—नहीं नहीं, तुम्हारा सब-कुछ रह जाय भीतर, और सिर्फ एक हाथ निकल आये बाहर, इससे मुझे डर लगता है।

नेपथ्यसे—मैं सिर्फ-एक हाथसे पकड़ना चाहता हूं इसीलिए तो मेरे पाससे सब भाग जाते हैं। अगर मैं पूरा निकलकर तुम्हें पाना चाहूं, तो क्या तुम पकड़ाई दोगी, नन्दिनी ?

नन्दिनी—तुमने तो मुझे भीतर आने ही नहीं दिया, फिर क्यों ऐसी बातें कर रहे हो ?

नेपथ्यसे—अपने अनवकाशके स्रोतके विरुद्ध खींचकर मैं तुम्हें अपने घरमें नहीं लाना चाहता। जिस दिन पालकी अनुकूल हवामें तुम अनायास ही आ सकोगी उसी दिन आगमनीका लग्न लगेगा। वह हवा अगर तूफानी हवा हो, तो भी कोई हर्ज नहीं ; उसे मैं अच्छी ही समझूंगा। अभी उसका समय नहीं हुआ।

नन्दिनी—मैं तुमसे कहती हूं, राजा, वैसी पालकी हवा लायेगा रंजन ! वह कहीं भी जाय, छुट्टी उसके साथ ही रहती है।

नेपथ्यसे—तुम्हारा रंजन जिस छुट्टीको साथ लिये फिरता है उस छुट्टीको लाल-कनेरके मधुसे मधुर कौन बनाये रखती है, मैं क्या नहीं जानता ? नन्दिनी, तुमने मुझे सिर्फ पोली छुट्टीकी ही खबर दी है, उसे भरनेके लिए मधु मैं कहाँसे लाऊं बताओ ?

नन्दिनी—अच्छा तो, आज मैं चल दी।

नेपथ्यसे—नहीं, मेरी बातका जवाब देती जाओ।

नन्दिनी—छुट्टी मधुसे कैसे भर उठती है, इसका जवाब तुम्हें रंजनको देखते ही मिल जायगा। बड़ा सुन्दर है वह।

नेपथ्यसे—सुन्दरका जवाब सुन्दर ही को मिलता है, सुन्दरी! असुन्दर जवाबको जब छीन लेना चाहता है तब वीणाके तार बजते नहीं, टूट जाते हैं। बस अब नहीं, जाओ तुम, चली जाओ, नहीं तो मुसीबतका सामना करना पड़ेगा।

नन्दिनी—जाती हूं, किन्तु कहे जाती हूं, आज मेरा रंजन आयेगा, आयेगा, आयेगा! किसी भी तरह उसे तुम रोक नहीं सकते। [प्रस्थान

खान-मजदूर फागूलाल और उसकी स्त्री चन्द्राका प्रवेश

फागूलाल—मेरी शराब कहाँ छिपा रखी है चन्द्रा, निकालो।

चन्द्रा—आज हो क्या गया तुम्हें! सवेरेसे ही शराब?

फागूलाल—आज छुट्टीका दिन है। कल उनलोगोंका मारण-चण्डीका व्रत था। आज ध्वजापूजा है, और उसके साथ अस्त्र-पूजा भी।

चन्द्रा—कहते क्या हो? वे ठाकुर-देवता मानते हैं?

फागूलाल—देखा नहीं तुमने, उनलोगोंका शराबका भण्डार, अस्त्र-शाला और मन्दिर तीनों बिलकुल सटे हुए हैं?

चन्द्रा—सो क्या छुट्टी मिली है तो शराब शुरू कर दोगे? गाँवमें रहते थे तब तो त्योहारकी छुट्टीमें—

फागूलाल—जंगलमें चिड़ियाको छुट्टी मिलती है तो वह उड़ने लगती है; और पिंजड़ेमें उसे छुट्टी दी जाय तो वह सिर धुनने लगती है। यक्षपुरके कामसे बढ़कर खतरनाक है छुट्टी, समझीं!

चन्द्रा—काम छोड़ दो न, चलो न गाँवमें, अपने घर।

फागूलाल—घरका रास्ता बन्द है, तुम्हें मालूम नहीं?

चन्द्रा—क्यों, बन्द क्यों है?

फागूलाल—हमारे घरसे उन्हें कोई मुनाफा नहीं मिलता।

चन्द्रा—हमलोग क्या उनकी जरूरतकी देहसे खूब कसके चुपका दिये गये हैं, जैसे धानकी देहसे तुष चुपका रहता है ? हमारे पास बाकी और कुछ बचा ही नहीं ?

फागूलाल—अपने विशु-पागलको तो तुम जानती हो, वो कहता है, बकरेका साबूत रहना सिर्फ उसीके लिए जरूरी है ; जो उसे खाते हैं वे हाड़-गोड़ खुर-पूंछ सब अलग करके ही खाते हैं। और तो क्या, बलिके स्थानमें जो वह मैं-मैं भैं-भैं किया करता है उसे भी लोग उसकी ज्यादती समझकर आपत्ति करते हैं। वो देखो, विशु-पागल गाना गाता-हुआ इधर ही को आ रहा है।

चन्द्रा—कुछ दिनसे उसका गला खूब खुल गया है।

फागूलाल—हाँ।

चन्द्रा—उसपर नन्दिनीका भूत चढ़ गया है ; वह इसके प्राण भी खींच रही है, और गाना भी खींच रही है।

फागूलाल—इसमें ताज्जुबकी क्या बात है ?

चन्द्रा—नहीं जी, ताज्जुब कुछ नहीं। लेकिन तुम होशियार रहना, समझे, किसी दिन तुम्हारे कण्ठसे भी गाना निकलने लगेगा ! उस दिन मुहल्लेवालोंकी क्या दशा होगी, भगवान जानें। वो मायाविनी है, जादू जानती है। किसी दिन सबपर आफत ढायेगी !

फागूलाल—विशुपर आफतका भूत आजसे नहीं सवार है, यहाँ आनेके पहलेसे ही वह नन्दिनीको जानता है।

चन्द्रा—अजी ओ विशु-समधी, सुनते जाओ, एक बात सुनते जाओ। कहाँ चले जा रहे हो ! गाना सुननेवाले आदमी यहाँ भी एकआध मिल सकते हैं, यहाँ तुम बिलकुल ही घाटेमें रहो सो बात नहीं।

विशुका प्रवेश और गाना

मम स्वप्न-तरी खेनेवाली तू कौन, अरी बाले, चंचल,
पालोंमें मादक पवन लगी, गायन-रत प्राण चले पागल।

तू सुध-बुध मुझे भुलाती चल,
डगमग निज नाव डुलाती चल,
निज दूर घाटपर तू ले चल।

चन्द्रा—तब तो कोई उम्मेद ही नहीं, हमलोग तो बहुत ज्यादा नजदीक हैं।

विशु— झूठी हैं मेरी चिन्ताएँ,
सब छूट चलें तो छुट जायें,
अपना घूंघट-पट खोल, अरी,
लख मुझे उठा दृग लोल, अरी,
छा दे स्व-हास्यसे प्राण विकल।

चन्द्रा—तुम्हारी सपनेकी नैयाका माँझी कौन है, सो मैं जानती हूँ।

विशु—बाहरसे कैसे जानोगी, मेरी नावमेंसे तो तुमने उसे देखा नहीं?

चन्द्रा—नैया तुम्हारी मँझधारमें ही डुबायेगी, कहे देती हूँ, तुम्हारी वो लाड़ली नन्दिनी!

खान-मजदूर गोकुलका प्रवेश

गोकुल—देखो विशु, तुम्हारी उस नन्दिनीके बारेमें मुझे बराबर खटका बना रहता है।

विशु—क्यों, क्या बात है?

गोकुल—बात कुछ नहीं, इसीसे तो खटका है। यहाँके राजाने खामखा उसे क्यों बुलाया कुछ समझमें नहीं आता। उसका रंग-ढंग मेरी कुछ समझमें नहीं आता।

चन्द्रा—समधी, यह हमलोगोंकी दुःखकी जगह है। यहाँ वो आठों पहर अपना सुन्दरीपना दिखाती फिरेगी, यह हमसे नहीं सहा जाता।

गोकुल—हमलोगोंको सीधे-सादे मोटे चेहरेपर विश्वास है, जो वजनमें भी भारी हो।

विशु—यक्षपुरीकी हवा ही ऐसी है जो सुन्दरकी अवज्ञा करा देती है। यही सत्यानासकी निशानी है। नरकमें भी सुन्दर है, पर सुन्दरको वहाँ कोई समझ नहीं पाता ; नरकवासियोंके लिए सबसे बड़ी सजा यही है।

चन्द्रा—अच्छा ठीक है, हम मूरख ही सही ; पर यहाँके सरदारों तकको वह फूटी आँखों देखे नहीं सुहाती, सो जानते हो ?

विशु—देखना, देखना, चन्द्रा, सरदारोंकी उन आँखोंकी छूत तुम्हारी आँखोंमें न लग जाय ! नहीं तो, हमलोगोंको देखकर भी तुम्हारी आँखें लाल हो उठेंगी। अच्छा, तेरा क्या कहना है फागूलाल ?

फागूलाल—सच्ची कहूँ भइया, नन्दिनीको देखता हूँ तो अपनी तरफ देखकर मारे शरमके मैं गड़-गड़ जाता हूँ। उसके सामने मेरी जबान बन्द हो जाती है।

गोकुल—विशु-भाई, उस लड़कीको देखकर तुम अपना मन खो बैठे हो, इसीसे तुम्हें दिखाई नहीं देता कि अपने साथ वह कैसे-कैसे कुलक्षण ले आई है। लेकिन अब समझनेमें ज्यादा देर न लगेगी, मैं कहे देता हूँ !

फागूलाल—विशु-भाई, तुम्हारी समधिन जानना चाहती है कि हमलोग शराब क्यों पीते हैं।

विशु—खुद विधाताकी कृपासे दुनियामें चारों तरफ शराबका चलन है, यहाँ तक कि इनलोगोंकी आँखोंके कटाक्षमें भी ! हम अपनी भुजाओंसे काम करते हैं, और ये अपनी बाहुओंके बन्धनसे हमें शराब पिलाती हैं। जीवलोकमें मेहनत-मजूरी भी करनी पड़ती है, और उसे भूलना भी पड़ता है। शराबके बिना भुलायेगा कौन ?

चन्द्रा—क्यों नहीं ! अरे, तुम जैसे जनम-शराबियोंके लिए विधाताकी दयाका कोई अन्त ही नहीं, उन्होंने शराबका भण्डार खोल दिया है !

विशु—एक तरफ भूख चाबुक मारती है, प्यास चाबुक मारती है, उसकी जलन कहती है, 'काम करो' ; और दूसरी तरफ जंगलकी हरियालीने बिछा रखा है जादू, धूपकी सुनहली छटाने फैला रखी है माया ; दोनोंने मिलकर नशा करा दिया है ; कहती हैं, 'छुट्टी है भई, छुट्टी है !'

चन्द्रा—इन्हें शराब कहते होंगे !

विशु—जिन्दगीकी शराब है यह। नशा फीका है, पर दिन-रात बना रहता है। सबूत चाहो तो सबूत भी दे सकता हूँ। हम इस राज्यमें और पातालमें सेंध काटनेके काममें लग गये, इससे हमारा स्वाभाविक नशा बन्द हो गया। इसीलिए तो हमारी अन्तरात्मा बाजारकी शराबके लिए इतनी फड़फड़ा रही है। स्वाभाविक साँस लेनेमें जब रुकावट पड़ती है तभी तो आदमी हाँप-हाँपकर साँस खींचता है।

रस सूख गया है प्राणोंका तो तेरे,
अतएव मरण-रससे प्याला भर ले रे।
वह अग्नि चिताकी गला, गया है ढाला,
वह सभी जलनकी, अरे, मिटाता ज्वाला,
हँसकर करता रंगीन शून्यको ए रे।

चन्द्रा—चलो न, समधी, हम सब भाग चलें।

विशु—कहाँ, उस नीले चँदोयेके नीचे, खुले शराबके अड्डेमें ? लेकिन रास्ता बन्द है। इसीसे तो इस कैदखानेमें चोरीकी शराबपर इतना जबरदस्त झुकाव है। हमारे पास न तो आकाश है, न अवकाश। इसीलिए तो हम अपनी सारी हँसी-खुशीमें गीत-संगीतको सूरजकी कड़ी धूपमें चुआकर तरल आग बनाकर पीया करते हैं ! हःहः हःहः, जितनी ठोस गुलामी है, उतनी ही ठोस छुट्टी !

तेरा रवि था आच्छन्न सघन नभ-घनमें,
दिन तेरे बिनसे हैं अकार्य-साधनमें,
आती है आये अतः तिमिरमय रजनी,
वह लुप्त ध्वस्त मादकताकी चिर सजनी,
विस्मृति हित ढक दे क्लान्त नयन वह तेरे।

चन्द्रा—कुछ भी कहो, विशु-समधी, यक्षपुरीमें आकर रमे तुम्हीं लोग हो ! हम औरतोंका कुछ भी नहीं बदला।

विशु—बदला नहीं तो क्या ! तुम्हारे फूल गये हैं सूख ; अब तो 'हाय सोना' 'हाय सोना'के अथाह पानीमें गोते खा रही हो !

चन्द्रा—हरगिज नहीं।

विशु—मैं कहता हूं, हाँ। अभागा फागू बारह घण्टेके बाद और भी चार घंटे मेहनत करके क्यों जान दे रहा है, सो न तो फागू जानता है, और न तुम। अन्तर्यामी ही जानते हैं। तुम्हारा 'सोने'का सपना भीतर ही भीतर उसके चाबुक लगा रहा है, वो चाबुक सरदारकी चाबुकसे भी कड़ी है।

चन्द्रा—अच्छा, तो फिर चले क्यों नहीं चलते ? चलो यहाँसे, अपने गाँवको लौट चलें।

विशु—इन सरदारोंने सिर्फ लौटनेका रास्ता ही बन्द कर दिया हो, सो नहीं, इच्छा तकका गला घोंट दिया है। आज अगर गाँवमें जाकर रहना भी चाहो तो वहाँ टिक नहीं सकतीं। कल ही सोनेका नशा तुम्हें यहाँ घसीट लायेगा। अफीमखोर चिड़िया जैसे छुटकारा पानेपर भी अपने पिंजड़ेमें लौट आती है, उसी तरह गाँवसे तुम्हें भाग आना पड़ेगा।

फागूलाल—अच्छा, भाई विशु, तुमने तो एक दिन किताब पढ़ते-पढ़ते आँखें गँवानेकी भी तैयारी कर ली थी, फिर तुम्हें हम जैसे मूर्खोंमें डालकर कुदाली किसने थमा दी ?

चन्द्रा—इतने दिन हो गये, पर इस बातका जवाब समधीसे आज तक कोई न पा सका।

फागूलाल—और मजा यह कि बातको जानते सब हैं !

विशु—कौनसी बात ?

फागूलाल—हमारी भीतरी खबर लेनेके लिए तुम्हें जासूस बनाके रखा गया था।

विशु—सब जानते थे तो मुझे जिन्दा क्यों रखा ?

फागूलाल—यह भी तो जानते थे कि यह काम तुमसे नहीं हो सकता।

चन्द्रा—ऐसे आरामके काममें भी न टिक सके, समधी ?

विशु—आरामका काम ? किसी सजीव देहके अदीठ-फोड़ेकी तरह उसके पीछे लगे रहना ! मैंने कहा, 'देश जाऊँगा, मेरी तबीयत बहुत खराब है।' सरदारने कहा, 'ऐसी बीमारीकी हालतमें देश जाओगे कैसे ? यहीं रहकर कोशिश करो, ठीक हो जाओगे।' मैंने यहीं कोशिश की, और ठीक हो गया। अन्तमें देखा कि यक्षपुरीके पेटमें घुसते ही उसका मुँह बन्द हो जाता है ; निकलनेका दूसरा कोई रास्ता ही नहीं। और अब तो उसके आशाहीन प्रकाशहीन जठरमें धीरे-धीरे गलने लगा हूं। अब तुममें हममें भेद इतना ही है कि सरदार तुमलोगोंकी जितनी बेकदरी करते हैं, मेरी उससे कहीं ज्यादा करते हैं। फटी पत्तलकी अपेक्षा फूटे भाँड़की इज्जत कम ही होती है।

फागूलाल—इसमें दुःख किस बातका है, विशु-भइया ? हमलोग तो तुम्हें सिर-माथे रखते हैं।

विशु—बात प्रकट होते ही मारा जाऊंगा मैं। जहाँ तुमलोगोंका प्रेम होगा, वहीं सरदारकी दृष्टि पड़ेगी। बेचारी मेढ़की टर्रटर्र करके मेढ़कका चाहे कितना ही स्वागत क्यों न करे, पर उसकी आवाज पहुंचती है साँपके कानोंमें !

चन्द्रा—कितने दिनमें तुम्हारा काम निबटेगा ?

विशु—पत्रामें तो दिनोंका कोई अन्त नहीं लिखा। एकके बाद दूसरा दिन, दूसरेके बाद तीसरा दिन ! दिनों दिन सुरंग खोदते ही चलना है, एक हाथके बाद दो हाथ, दो हाथके बाद तीन हाथ। सोना भी, इसी तरह निकलता ही आता है, एक ढेलके बाद दो ढेल, दोके बाद तीन, तीनके बाद चार। यक्षपुरीमें गणितके अंकोंका भी अन्त नहीं ; एकके बाद दूसरा अंक, दूसरेके बाद तीसरा, तीसरेके बाद चौथा, कतार-सी लगती चली जा रही है। यह कतार किसी अर्थपर नहीं पहुंचती, इसीसे उनकी दृष्टिमें हम आदमी नहीं, संख्या हैं। फागू भाई, तुम कौनसी संख्या हो ?

फागूलाल—मेरी पीठपर तो लिखा है, मैं '४७-फ' हूं।

विशु—मैं '६९-ङ' हूं। गाँवमें था आदमी, यहाँ आकर हो गया हूं 'दस-पचीस' खेलका खाना। हमारी छातीपर जुआका खेल चालू है।

चन्द्रा—समधी, उनके यहाँ सोना तो बहुत इकट्ठा हो गया है, और भी जरूरत है क्या ?

विशु—'जरूरत' नामकी जो चीज है, उसका अन्त है। खानेकी जरूरत है, पेट भरते ही उसका अन्त मिल जाता है। नशेकी जरूरत नहीं, उसका अन्त भी नहीं। 'सोने' की जो शराब है, हमारे यक्षराजके लिए वह ठोस शराब है। समझ नहीं सकीं ?

चन्द्रा—नहीं।

विशु—शराबका प्याला हाथमें पड़ते ही भूल जाते हैं कि भाग्यकी चहारदीवारीके अन्दर हम बन्द हैं। समझते हैं हमारी बेरोकटोक छुट्टी ही छुट्टी है। सोनेकी ईंट हाथमें पड़ते ही यहाँके मालिकको वैसा ही मोह आ घेरता है। वह सोचता है कि सर्वसाधारणकी जमीनका खिंचाव वहाँ तक नहीं पहुँचता, असाधारणके आसमानमें वह उड़ रहा है !

चन्द्रा—नवान्नका समय आ रहा है, अब देर नहीं, गाँव-गाँवमें उसकी तैयारियाँ हो रही हैं। तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, चलो, घर चलें। एक बार सरदारको जाकर अगर—

विशु—स्त्री बुद्धिमें अभी तक सरदारको तुमने पहचाना नहीं मालूम होता है !

चन्द्रा—क्यों, देखनेमें तो वह—

विशु—बहुत अच्छा है, चमकता है। मकरके दाँत बड़े सुन्दर होते हैं, किसीको पकड़ते वक्त ऐसे जमकर बैठते हैं कि देखते ही बनता है ! मकरराज खुद भी चाहें तो उन्हें ढीला नहीं कर सकते।

चन्द्रा—लो, सरदार भी आ गये।

विशु—तब तो बन गया काम ! मेरी बात जरूर सुन ली होगी।

चन्द्रा—क्यों, अभी तो तुमने ऐसी कोई बात नहीं कही, जिससे—

विशु—समधिन, हम तो सिर्फ बात ही करते हैं, पर मानी लगानेका

काम जो उनका है ! लिहाजा, किस बातकी चिनगारी किस छप्पड़में आग लगाती है, कोई नहीं जानता ।

सरदारका प्रवेश

चन्द्रा—सरदार-दादा !

सरदार—क्या नातिन, खबर तो सब अच्छी है ?

चन्द्रा—एक दफे घर जानेकी छुट्टी दो न, दादा ?

सरदार—क्यों ? जो घर दिया है सो क्या बुरा है; तुम्हारे घरसे तो लाख दरजे अच्छा है । सरकारी खर्चसे चौकीदार तक रख दिया गया है । क्या जी, '६९-ङ', तुम यहाँ कैसे ? तुम्हें इनमें देखता हूं तो ऐसा लगता है जैसे बगुलोंमें हंस पधारे हों नाच सिखाने !

विशु—सरदारजी, तुम्हारा मजाक सुनकर गुदगुदी पैदा नहीं होती । नचाने-लायक पैरोंमें जोर होता तो यहाँसे भाग खड़ा होता पूंछ उठाकर । तुम्हारे इलाकेमें नचानेका काम कितना खतरनाक है, उसकी नजीर मैं देख चुका हूं । ऐसा हुआ है कि सीधी चाल चलनेमें भी पैर काँपने लगते हैं ।

सरदार—नातिनी, एक खुशखबरी है । इनलोगोंको अच्छी-अच्छी बातें सुनानेके लिए कनीराम गुसाँईको बुलवाया है । इनलोगोंकी दक्षिणासे उनका खर्चा चल जायगा । गुसाँईजीसे रोज शामको—

फागूलाल—नहीं नहीं, ऐसा न कीजिये, सरदारजी ! अभी तो शामको शराब पीकर ज्यादा-से-ज्यादा मतवाले होकर ऊधम ही मचाते हैं, उपदेश सुनानेसे खूनखराबी होने लगेगी !

विशु—चुप रहो, फागूलाल, चुप रहो ।

गुसाँईका प्रवेश

सरदार—ये लो, कहनेकी देर नहीं कि आ पहुंचे । प्रभु, पालागन । हमारे इन कारीगरोंका कमजोर मन ठहरा, बीच-बीचमें अशान्त हो उठता है । इनके कानोंमें जरा शान्तिका मन्त्र डालियेगा । बड़ी जरूरत है इसकी ।

गुसाँई—इनलोगोंकी बात कह रहे हो ? अहा, ये तो स्वयं कूर्म-अवतार हैं, बोझके नीचे अपनेको दबाये रखते हैं, तभी तो संसार टिका हुआ है ! विचारकर देखते हैं तो शरीर-मन पुलकित हो उठता है। बेटा '४७-फ', एक बार सोचो तो सही, जिस मुंहसे हम नाम-कीर्तन करते हैं उस मुंहके लिए अन्न जुटाते हो तुमलोग ! जिस नामावलीको ओढ़नेसे शरीर पवित्र होता है, उसे तुम्हीं लोग बनाते हो खूनका पसीना करके ! यह क्या मामूली बात है ! आशीर्वाद देता हूं, तुमलोग हमेशा इसी तरह दृढ़ रहो, तभी भगवानका दान तुमलोगोंके पास दृढ़ बना रहेगा। बेटा, एक बार कण्ठ खोलकर कहो तो 'हरि हरि !' तुमलोगोंका सारा बोझ हलका हो जायगा। हरिनाम आदावन्ते च मध्ये च।

चन्द्रा—अहा, कैसा मीठा लग रहा है। गुसाँई बाबा, बहुत दिनोंसे ऐसी बात नहीं सुनी। दो, दो, मुझे जरा अपने पाँवोंकी धूल तो दो, बाबा !

फागूलाल—अब तक हमलोग दृढ़ थे, पर अब तो नहीं रहा जाता। सरदार, इतना ज्यादा फजूलखर्च किसलिए हो रहा है ? दक्षिणा उगानेको कहो तो उगा दे सकता हूँ, पर यह पाखण्ड हमलोगोंसे नहीं सहा जायगा।

विशु—फागूलाल, पागल होओगे तो बचना मुश्किल है, खामोश रहो, खामोश !

चन्द्रा—इहलोक-परलोक तुम दोनों ही गँवाने बैठे हो ! तुम्हारी क्या गत होगी, सोचो तो सही ! ऐसी मति तो तुम्हारी पहले नहीं थी, मैं खूब समझ रही हूँ, तुमलोगोंको उस नन्दिनीकी हवा लग गई है।

गुसाँई—कुछ भी कहो, सरदार, कैसी सरलता है इनमें ! जो पेटमें है सो मुँहमें। इन्हें हम क्या सिखायेंगे, ये ही हमें शिक्षा देंगे। समझे ?

सरदार—समझा क्यों नहीं ! और यह भी समझ गया हूँ कि ऊधम उठ कहाँसे रहा है। इनका भार मुझे ही लेना पड़ेगा। प्रभुके चरण बल्कि उस बस्तीमें नाम सुना आवें, वहाँ बढ़इयोंमें जरा-कुछ खिटखिट शुरू हो गई है।

गुसाँई—कौन-सी बस्ती बताई, सरदार ?

सरदार—वही 'ट'-'ठ' बस्ती। वहाँका '७१-ट' है चौधरी! '६५-ण' जहाँ रहता है उसके बाई तरफवाली बस्ती।

गुसाँई—सरदार दन्ती 'न' की बस्ती तो फिर भी अभी हिल-डुल रही है, पर मूर्धन्य-'ण'वाले तो फिलहाल मधुर रसमें गोते लगा रहे हैं। मन्त्र लेने लायक कान वहाँ तैयार होना ही चाहते हैं। फिर भी, और-कुछ महीने वहाँ फौज रखना अच्छा है। कारण, नाहंकारात् परो रिपुः, फौजके दबावसे अहंकारका दमन होता है। उसके बाद हमारी पारी है। तो, अब मैं चलूँ।

चन्द्रा—प्रभु, आशीर्वाद दो, जिससे इनलोगोंको सुमति हो। इनके कसूरपर कुछ ध्यान न देना।

गुसाँई—कोई डर नहीं बेटी, ये लोग बिलकुल ठण्डे हो जायेंगे।

[प्रस्थान

सरदार—कहो जी, '६६-ङ', तुम्हारी बस्तीके कैसे मिजाज हैं? मुझे तो कुछ दालमें काला मालूम होता है!

विशु—हो सकता है। गुसाँईजीने उन्हें कूर्म-अवतार बताया है, लेकिन शास्त्रका मत है कि अवतारका रूप बदला करता है। कूर्म अचानक वराह हो उठता है, वर्मके बदले निकल पड़ते हैं दाँत, और धीरजके बदले बढ़ जाती है जिद।

सरदार—हरगिज नहीं। खैर, सुन लिया, अच्छा ही हुआ। याद रखूंगा! [प्रस्थान

चन्द्रा—अहा, देखा, सरदार कैसे अच्छे आदमी हैं! सबके साथ हँसके बतराते हैं।

विशु—मगरके दाँत शुरूमें हँसते और अन्तमें काटते हैं।

चन्द्रा—इसमें काटना कहाँ है?

विशु—जानती नहीं, इनलोगोंने तय किया है कि अबसे यहाँ कारीगरोंके साथ उनकी औरतें नहीं रह सकेंगी?

चन्द्रा—क्यों?

विशु—उनलोगोंके खातेमें हमारी जगह है गिनतीके तौरपर ; और गिनतीके अंकोंमें नारीका अंक गणित-शास्त्रमें मेल नहीं खाता।

चन्द्रा—हाय राम! उनलोगोंके घरमें क्या औरतें नहीं हैं? उनका कैसे मेल खाता है?

विशु—वे भी सोनेकी शराबमें बदहोश हैं। नशेमें पतियोंसे भी बाजी मार ले जाती हैं। हमलोग उन्हें दिखाई ही नहीं देते।

चन्द्रा—समधी, तुम्हारे घरमें भी तो स्त्री थी, उसका क्या हुआ? बहुत दिनोंसे कोई खबर ही नहीं मिली?

विशु—जब तक जासूसीके ऊँचे ओहदेमें नाम दर्ज था, सरदारनियोंके ऊँचे महलमें ताश खेलनेके लिए उसकी भी पुकार हुआ करती थी। जबसे मैं तुम्हारे फागूलालके दलमें आया हूँ तबसे उसका भी न्योता बन्द हो गया। उसी बेइज्जतीके मारे बेचारी मुझे छोड़कर चली गई!

चन्द्रा—छि छि, ऐसा पाप भी कोई करता है!

विशु—इस पापकी सजामें दूसरे जन्ममें उसे सरदारनी होकर पैदा होना पड़ेगा।

चन्द्रा—अरे, समधी, देखो देखो, उधर तो देखो जरा! हाथी घोड़ा पालकी! मयूरपंखी! जरा देखो भी तो, हौदेकी झालर कैसी चमक रही है, कैसे अच्छे घुड़सवार हैं। बरछोंको तो देखो, जैसे सूरजकी चमक चुराये लिये जा रहे हों।

विशु—तुम्हीं देखो, सरदारिनें ध्वजापूजाके न्योतेमें जा रही हैं।

चन्द्रा—अहा, कैसी धूमधाम है, कैसी-कैसी रंग-बिरंगी पोशाक हैं! कैसे अच्छे चेहरे हैं! अच्छा, समधी, तुम अगर वो काम नहीं छोड़ते, तो तुम भी उनके साथ ऐसी ही धूमधामसे निकलते? और, तुम्हारी वो स्त्री—

विशु—हाँ, हमारी भी यही दशा होती।

चन्द्रा—अब तुम उनमें शामिल नहीं हो सकते? कोई रास्ता नहीं?

विशु—है रास्ता, मोरीके भीतरसे।

नेपथ्यसे—पागल-भइया!

विशु—क्या री, पगली !

फागूलाल—लो, आ गई पुकार नन्दिनीकी ! अब आज विशु-भइयाके दरसन नहीं मिलनेके !

चन्द्रा—अपने विशु-भइयाकी अब तुम आस छोड़ दो। अच्छा, समधी, तुम यहाँ कैसे आ छुपके, बताओ तो सही ?

विशु—दुःख दुःखसे आ चुपका है, चन्द्रा ! और कुछ नहीं।

चन्द्रा—समधी, तुम इस तरह घुमा-फिराके बात क्यों करते हो ?

विशु—तुमलोग नहीं समझोगे। अरे, यह ऐसा दुःख है कि जिसे भूलनेके बराबर भी दूसरा दुःख नहीं !

फागूलाल—विशु-भइया, साफ-साफ बताओ, क्या बात है ? नहीं तो गुस्सा आने लगता है।

विशु—बताता हूं, सुनो। पासके पावनेको लेकर जो हवसका दुःख है, वह पशुका है, और दूरके पावनेको लेकर आकांक्षाका जो दुःख है वह आदमीका है। मेरा वह चिरदुःखका दूरका उजाला नन्दिनीके अन्दर चमक उठा है।

चन्द्रा—ये-सब बातें मेरी कुछ समझमें नहीं आतीं, समधी। मैं तो एक बात समझती हूं कि जिस स्त्रीको तुमलोग जितना कम समझते हो, वही तुमलोगोंको उतना ही ज्यादा खींचती है। हम सीधी-सादी गाँवकी औरतें हैं, इसीलिए हमारी कीमत कम है। फिर भी, किसी तरह तुमलोगोंको सीधे रास्ते ले चलती हैं। लेकिन, आज कहे देती हूं, याद रखना, यह लड़की लाल-कनेरकी मालाके फन्देमें फाँसकर तुम्हें सत्यानासके रास्तेमें ले जायगी ! [चन्द्रा और फागूलालका प्रस्थान

नन्दिनीका प्रवेश

नन्दिनी—पागल-भाई, दूरके रास्तेसे आज सवेरे वे पूसका गीत गाते-हुए खेतकी तरफ जा रहे थे, गीत सुना था तुमने ?

विशु—मेरा सवेरा क्या तुम्हारे सवेरेकी तरह है जो मुझे गीत सुनने देगा ! मेरा सवेरा तो थकी-हुई रातका झाड़-फेंका-हुआ कूड़ा-करकट है।

नन्दिनी—आज खुशीमें मैंने सोचा था कि यहाँके ऊँचे परकोटेपर चढ़कर उनका गीत सुनूं, उनकी खुशीमें हिस्सा लूं। पर कहीं भी रास्ता नहीं मिला। इसीसे तुम्हारे पास आई हूं।

विशु—मैं तो परकोटा नहीं हूं।

नन्दिनी—तुम्हीं मेरे परकोटा हो। तुम्हारे पास आकर, ऊँचे चढ़के मैं बाहरको देखती हूं।

विशु—तुम्हारे मुंहसे ऐसी बात सुनके आश्चर्य होता है।

नन्दिनी—क्यों ?

विशु—यक्षपुरीमें घुसनेके बादसे अब तक मुझे ऐसा लगता था कि जीवनसे मैंने अपने आकाशको खो दिया है। समझता था कि यहाँके टुकड़ोंमें बँटे-हुए आदमियोंके साथ मुझे एक ही ओखलीमें कूटकर पिण्ड बना डाला गया है, उसमें कहीं भी कोई पोल या सँध नहीं है। इतनेमें तुमने आकर मेरे मुँहकी तरफ इस तरह ताका कि मैं तुरत समझ गया, मेरे अन्दर अब भी उजाला है कहीं !

नन्दिनी—पागल-भाई, इस बन्द गढ़के भीतर तुम्हारे-मेरे बीचमें ही थोड़ा-सा आकाश बचा हुआ है। बाकी सब भरकर ठोस हो गया है।

विशु—उतना-सा आकाश बचा हुआ है इसीसे तो मैं तुम्हें गीत सुना पाता हूं।

गीत

मेरे गाने सुननेको तुम मुझे जगाये रखतीं,
ओ नींद भगानेवाली !
उरमें झटके दे-देके तुम मुझको टेरा करतीं,
ओ दुःख जगानेवाली !
घिर चला अँधेरा सारे
खग लौटे पंख पसारे
नावें आ लगीं किनारे
पर यहाँ विराम कहाँ है ? कल मेरे हिये न पड़ती,
ओ दुःख जगानेवाली !

नन्दिनी—पागल-भाई, तुम मुझे कह रहे हो 'दुःख जगानेवाली' ?

विशु—तुम मेरे समुद्रके अगम्य पारकी दूती हो। जिस दिन तुम यक्षपुरीमें आई, उसी दिन मेरे हृदयमें उस नुनखरे पानीकी हवाने आकर धक्का दिया था।

तुम बीच-बीचमें मेरे सब धन्धोंके
रुकने ही देतीं नहीं रुदनके झोंके
संस्पर्श हृदयका करके
ये प्राण सुधासे भरके
हट जाती हो सुख हरके
नित तुम्हीं खड़ी रहती हो मम व्यथा-ओटमें आली,
ओ दुःख जगानेवाली !

नन्दिनी—तुमसे एक बात कहती हूं, पागल-भाई। जिस दुःखका गीत तुम गाते हो, पहले मुझे उसकी कुछ खबर ही नहीं थी। किसीने कुछ बताया ही नहीं।

विशु—क्यों, रंजनने ?

नन्दिनी—नहीं। दोनों हाथसे दो-दो डाँड़ चलाकर वह मुझे तूफानकी नदी पार करा देता है; जंगली घोड़ेपर बिठाकर उसका झोंटा पकड़कर वह मुझे जंगलके भीतरसे निकाल ले जाता है, अपने ऊपर हमला करते-हुए शेरकी दोनों भौहोंके बीच तीर मारकर वह मेरे डरको चुटकियोंमें उड़ा देता है। जैसे वह नागाई-नदीमें कूदकर बहावसे खेला करता है वैसे ही वह मेरे साथ ऊधम मचाया करता है। प्राणोंकी बाजी रखकर वह हार-जीतका खेल खेला करता है। उस खेलमें ही उसने मुझे जीत लिया है। एक दिन तुम भी तो उसीमें थे, पर न-जाने क्या समझकर तुम अचानक उस खेलमेंसे अकेले निकल आये। आते समय कैसे-तो तुमने मेरे मुंहकी तरफ देखा, मैं समझ ही न सकी। उसके बाद, कितने दिन हो गये, तुम्हारा कुछ पता ही नहीं चला। कहाँ गये थे तुम, बताओ तो ?

विशु— गीत

ओ चाँद, दुःखके सागरमें आँसूका आया विषम ज्वार,
भर गये लबालब उभय तीर, थे एक सतहमें आरपार,
मम तरी रही परिचित तटपर, बन्धन उसका खुल गया वहाँ,
ले गई बहाकर वायु उसे किस अविदित दिशिकी ओर कहाँ ?

नन्दिनी—उस अपरिचितके किनारेसे यहाँ तुम्हें कौन ले आया सुरंग खोदनेके कामपर ?

विशु—एक लड़की। सहसा तीर खाकर उड़ता-हुआ पक्षी जैसे जमीनपर आ गिरता है, उसने मुझे उसी तरह इस धूलमें ला पटका है। मैं अपनेको भूले हुए था।

नन्दिनी—तुम्हें वह छू कैसे सकी ?

विशु—प्यासेके लिए पानी जब आशाके अतीत होता है, मरीचिका तभी उसे धोखा देती है। उसके बाद वह गुमराह हो जाता है और अपनेको भूल जाता है। एक दिन पश्चिमके जंगलेमेंसे मैं देख रहा था बादलोंकी स्वर्णपुरी, और वह देख रही थी सरदारके महलका स्वर्ण-कलश। उसने मुझे आँखें मटकाते हुए कहा, 'वहाँ मुझे ले चलो, देखूं तुममें कितना सामर्थ्य है!' मैंने दर्पके साथ कह दिया, 'ले चलूंगा।' ले गया उसे सरदारके महलमें। और तब मुझे होश आया!

नन्दिनी—मैं आई हूं तुम्हें यहाँसे निकाल ले जानेके लिए। तुम्हारी सोनेकी बेड़ी मैं तोडूंगी।

विशु—तुमने जब कि यहाँके राजा तकको डिगा दिया है तो मैं तुम्हें कैसे रोक सकता हूं! अच्छा, राजासे तुम्हें डर नहीं लगता ?

नन्दिनी—जालके बाहरसे डर लगता है। पर मैंने जो भीतर जाकर देखा है!

विशु—कैसा देखा ?

नन्दिनी—देखा, आदमी है वह भी, पर विराट विशाल! ललाट है

सतमंजिले मकानके सिंहद्वार-सा। भुजाएँ ऐसी लगती हैं जैसे किसी दुर्गम दुर्गके लोहेके अर्गल हों। ऐसा लगा जैसे रामायण-महाभारतमेंसे कोई निकल आया हो!

विशु—भीतर जाकर और क्या देखा?

नन्दिनी—उसके बायें हाथपर एक बाज बैठा था; उसे अड्डेपर बिठाकर वह मेरे मुंहकी तरफ देखता रहा। उसके बाद, बाजके परोंमें जैसे वह उंगलियाँ चला रहा था वैसे ही मेरा हाथ लेकर उसपर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगा। थोड़ी देर बाद पूछ बैठा, 'तुम्हें डर नहीं लगता मुझसे?' मैंने कहा, 'बिलकुल नहीं।' तब वह मेरे खुले-हुए बालोंमें हाथ डालकर बहुत देर तक चुपचाप आँखें मीचे बैठा रहा।

विशु—कैसा लगा तुम्हें?

नन्दिनी—अच्छा लगा। कैसा बताऊं? मानो वह हजार सालका बूढ़ा वटवृक्ष हो, और मैं छोटी-सी चिड़िया। उसकी किसी डालीकी नोंकपर बैठकर मैं अगर जरा झूला झूल जाऊं तो जरूर उसका रोम-रोम खुश हो जाय। उस अकेले प्राणको इतनी-सी खुशी देनेमें मुझे तो खुशी ही होती है।

विशु—फिर उसने क्या कहा?

नन्दिनी—कुछ देर बाद अचानक वह भड़भड़ा उठा; और भालेकी नोंक-जैसी अपनी तीक्ष्णदृष्टिको मेरी आँखोंमें गाड़कर बोला, 'मैं तुम्हें जानना चाहता हूं!' मेरा सारा शरीर काँप उठा। मैंने कहा, 'जाननेका क्या है मुझमें! मैं क्या तुम्हारी पोथी हूं?' उसने कहा, 'पोथियोंमें जो कुछ है, मैं सब जान चुका हूं; तुम्हें नहीं जानता।' उसके बाद फिर वह न-जाने कैसा व्यग्र-सा हो उठा, पूछने लगा, 'रंजनके बारेमें मुझे सब बताओ? उसे तुम कैसा प्यार करती हो?' मैंने कहा, 'पानीके भीतरकी पतवार आकाशके पालको जैसा प्यार करती है, मेरा प्यार वैसा ही है। पालमें लगता है हवाका गीत और पतवारमें जाग उठता है पानीका नाच।' बहुत बड़े लालची लड़केकी तरह वह चुपचाप मेरे मुंहकी तरफ एकटक देखता रह गया। फिर सहसा मुझे चौंकाकर बोल उठा, 'उसके लिए तुम अपने प्राण दे सकती हो?' मैंने कहा,

'हाँ, अभी तुरत।' सुनते ही मानो वह गरज उठा, बोला, 'हरगिज नहीं।' मैंने कहा, 'जरूर दे सकती हूं।' उसने पूछा, 'फायदा ?' मैंने कहा, 'मैं नहीं जानती।' तब वह भीतरसे फड़फड़ाकर बोल उठा, 'जाओ, तुम मेरे घरसे निकल जाओ, जाओ, मेरा काम चौपट न करो, जाओ।' इसका मतलब मेरी समझमें नहीं आया।

विशु—सब बात वह साफ-साफ जानना चाहता है। जिस चीजको वह समझ नहीं पाता, वह उसके मनको व्याकुल कर देती है, इसीसे उसे गुस्सा आ जाता है।

नन्दिनी—पागल-भाई, उसपर दया नहीं आती तुम्हें ?

विशु—जिस दिन उसपर विधाताकी दया होगी उस दिन वह मर जायगा।

नन्दिनी—नहीं नहीं, तुम नहीं जानते कि जिन्दा रहनेके लिए वह कितना अधीर हो उठा है।

विशु—उसके जिन्दा रहनेके क्या मानी हैं, सो तुम आज ही देख लोगी। मालूम नहीं तुमसे सहा जायगा या नहीं।

नन्दिनी—वो देखो पागल-भाई, छाया देखो। जरूर सरदारने हमारी बातें छिपकर सुनी होंगी।

विशु—यहाँ तो चारों ही तरफ सरदारकी छाया है, उससे बचा नहीं जा सकता। हाँ, सरदार तुम्हें कैसा लगा ?

नन्दिनी—उस जैसी मरी-हुई चीज मैंने कहीं नहीं देखी। ऐसा लगता है जैसे वह जंगलसे काटकर लाया-गया बेंत हो। न उसमें पत्ते हैं, न जड़, हड्डी तकमें रस नहीं; सूखकर मानो किसीपर पड़नेके लिए काँप रहा हो।

विशु—प्राणोंपर शासन करनेके लिए ही प्राण दिये दे रहा है अभागा।

नन्दिनी—चुप रहो, सुन लेगा।

विशु—चुप्पीको भी तो वह सुन लेता है, उससे संकट और-भी बढ़ जाता है। जब खान-मजदूरोंके साथ रहता हूँ तब बातचीतमें सरदारसे सम्हलके चलता हूं। इसीसे मुझे निकम्मा समझकर अपनी उपेक्षासे उन

लोगोंने अब तक मुझे जिला रखा है। अपने डण्डेसे भी वे मुझे नहीं छूते। लेकिन, पगली, तेरे सामने मन स्पर्धासे फूल उठता है, सावधान होनेमें घृणा-सी लगती है।

नन्दिनी—नहीं नहीं, संकटको तुम न्योता देकर न बुलाओ। लो, सरदार आ गया।

सरदारका प्रवेश

सरदार—क्यों जी, '६९-ङ', सभीके साथ तुम्हारा प्रेम है, किसीसे कोई परहेज नहीं, क्यों ?

विशु—और तो क्या, तुम्हारे साथ भी शुरू हो गया था, परहेज करते ही ठन गई।

सरदार—किस विषयकी चरचा हो रही थी ?

विशु—इस बातकी सलाह कर रहे थे कि कैसे तुमलोगोंके किलेमेंसे निकलकर भागा जा सकता है।

सरदार—कहते क्या हो, इतनी हिम्मत ? और कबूल करते हुए भी डर नहीं ?

विशु—सरदार, मनमें तो सब जानते ही हो। पिंजड़ेका पंछी सींखचोंपर जो चोंच मारता है सो प्यारसे नहीं मारता। यह बात कबूल की जाय तो क्या, और न की जाय तो क्या ?

सरदार—यह तो जानता हूं कि पंछी प्यारसे चोंच नहीं मारता ; पर कबूल करनेमें डरता नहीं, यह अब मालूम हो रहा है।

नन्दिनी—सरदारजी, तुमने तो कहा था कि आज तुम रंजनको ले आओगे। पर बात तो नहीं रखी ?

सरदार—आज ही देख लोगी उसे।

नन्दिनी—सो मैं जानती हूँ। फिर भी तुमने जो आशा दी, उसके लिए जय मनाती हूं तुम्हारी। यह लो कुन्द-फूलकी माला।

विशु—छि छि, माला नष्ट कर दी तुमने। रंजनके लिए क्यों नहीं रखी ?

नन्दिनी—उसके लिए है माला।

सरदार—होगी क्यों नहीं, गलेमें लटक रही है न! यह जयमाला है कुन्द-फूलकी, यह हाथका दान है; और उसकी वरमाला है लाल-कनेरकी, वह है हृदयका दान। अच्छा है, हाथका दान हाथों-हाथ चुक जाना ही अच्छा है, नहीं-तो सूख जायगा। हृदयका दान जितनी ज्यादा प्रतीक्षामें रहेगा उतनी ही उसकी कीमत बढ़ेगी! [प्रस्थान

नन्दिनी (जालकी खिड़कीके पास जाकर)—सुनते हो?

नेपथ्यसे—कहो, क्या कहना चाहती हो?

नन्दिनी—एक बार खिड़कीके पास तो आओ।

नेपथ्यसे—यह लो, आ गया।

नन्दिनी—मुझे भीतर आने दो, बहुत बातें करनी हैं।

नेपथ्यसे—बार-बार क्यों व्यर्थ अनुरोध करती हो। अभी समय नहीं हुआ। तुम्हारे साथ यह कौन है? रंजनका जोड़ीदार है क्या?

विशु—नहीं, राजा, मैं रंजनका दूसरा पहलू हूं, जिसपर उजाला नहीं पड़ता। मैं अमावस्या हूं।

नेपथ्यसे—नन्दिनीको तुमसे क्या काम है? नन्दिनी, यह तुम्हारा कौन है?

नन्दिनी—यह मेरा साथी है, मुझे गाना सिखाता है। इसीने तो मुझे सिखाया है—

करती हूं मैं प्रेम, अरे हाँ, करती हूं मैं प्यार,
इस स्वरमें ही वेणु बजाती, करती हूं जल-थल गुंजार।

नेपथ्यसे—यही तुम्हारा साथी है? इसे अभी-तुरत अगर तुमसे अलग कर दूं तो क्या हो?

नन्दिनी—तुम्हारे गलेका सुर अचानक यह कैसा हो उठा? ठहरो तुम। तुम्हारा कोई साथी नहीं है क्या?

नेपथ्यसे—मेरा साथी! मध्याह्नके सूर्यका कोई साथी होता है?

नन्दिनी—अच्छा, जाने दो। मैया री! तुम्हारे हाथमें यह क्या है?

नेपथ्यसे—मरा-हुआ मेढ़क।

नन्दिनी—क्या करोगे इसका?

नेपथ्यसे—यह मेढ़क किसी दिन एक पत्थरके कोटरमें घुसा था। उसमें यह तीन हजार वर्ष छिपा बैठा था। इसी तरह कैसे टिका जा सकता है, इसका रहस्य सीख रहा था इससे। किस तरह जीया जा सकता है, सो यह नहीं जानता। आज यह अच्छा नहीं लगा, पत्थरका कोटर मैंने तोड़ डाला, निरन्तर टिके-रहनेसे इसे छुटकारा दे दिया। क्या यह अच्छी खबर नहीं है?

नन्दिनी—मेरे भी चारों तरफसे तुम्हारा पत्थरका दुर्ग खुल जायगा। मैं जानती हूं, आज रंजनसे मेरी भेंट होगी।

नेपथ्यसे—तुम-दोनोंको तब मैं एकसाथ देखना चाहता हूं।

नन्दिनी—पर जालकी ओटमेंसे अपने चश्माके भीतरसे तुम्हें दिखा नहीं देगा।

नेपथ्यसे—घरके भीतर बिठाकर देखूंगा।

नन्दिनी—इससे क्या होगा?

नेपथ्यसे—मैं जानना चाहता हूं!

नन्दिनी—तुम जब जाननेकी बात कहते हो तो मुझे कैसा-तो डर-सा लगता है।

नेपथ्यसे—क्यों?

नन्दिनी—सोचती हूं, जिस चीजको मनसे नहीं जाना जा सकता, सिर्फ प्राणोंसे समझा जा सकता है, उसपर तुम्हें कोई हमदर्दी ही नहीं!

नेपथ्यसे—उसपर विश्वास करनेकी हिम्मत नहीं होती, डर लगा रहता है कि बादमें कहीं ठगाया न जाऊं! जाओ तुम, मेरा समय नष्ट न करो। — नहीं नहीं, ठहरो जरा। तुम्हारी अलकोंके साथ यह जो लाल-करनेका गुच्छा गाल तक उतर आया है, इसे मुझे दे दो।

नन्दिनी—इसे लेकर क्या करोगे?

नेपथ्यसे—इस फूलके गुच्छेको देखते ही मुझे ऐसा लगता है मानो यह मेरा ही रक्तिम-प्रकाशका शनिग्रह है, फूलका रूप धारण करके आया है। कभी जी चाहता है कि तुमसे छीनकर इसे मैं नोंच-तोड़कर फेंक दूं; और फिर सोचता हूं, अगर किसी दिन नन्दिनी अपने हाथसे इसकी माला मुझे पहना दे, तो—

नन्दिनी—तो क्या हो ?

नेपथ्यसे—तो शायद मैं बड़ी आसानीसे मर सकूंगा।

नन्दिनी—एक आदमी है जो लाल-कनेरको प्राणोंसे भी अधिक चाहता है, उसीकी यादमें मैंने आज इन फूलोंके करनफूल बनाकर पहने हैं।

नेपथ्यसे—तो मैं तुमसे कहे देता हूं, यह मेरा भी शनिग्रह है, और उसका भी शनिग्रह है।

नन्दिनी—छि छि, तुम ऐसा क्यों कहते हो ! मैं जाती हूं।

नेपथ्यसे—कहाँ जाओगी ?

नन्दिनी—तुम्हारे किलेके दरवाजेके पास बैठी रहूंगी।

नेपथ्यसे—क्यों ?

नन्दिनी—रंजन जब उस रास्तेसे निकलेगा तो देखेगा कि मैं उसके लिए बैठी राह देख रही हूं।

नेपथ्यसे—रंजनको अगर मैं मसलके धूलमें मिला दूँ, तो फिर तुम उसे पहचान ही न सकोगी !

नन्दिनी—आज तुम्हें हो क्या गया है ! मुझे झूठमूठको डरा क्यों रहे हो ?

नेपथ्यसे—झूठमूठका डर ? जानती नहीं, मैं भयंकर हूं !

नन्दिनी—अचानक तुम्हारा यह कैसा भाव ! लोग तुमसे डरें, क्या तुम यही देखना पसन्द करते हो ? हमारे गाँवका श्रीकण्ठ रामलीलामें राक्षस बनता है; वह जब खेलमें उतरता है तो लड़के उसे देखकर डरके मारे काँप बैठते हैं, पर श्रीकण्ठको इससे बड़ी खुशी होती है ! तुम्हारी भी ठीक वही दशा है। मुझे कैसा लगता है सच्ची बताऊँ ? नाराज तो न होओगे ?

नेपथ्यसे—कहो, क्या कहती हो ?

नन्दिनी—यहाँके लोगोंका रोजगार ही है डर दिखाना। इसीसे उन लोगोंने तुम्हें जालमें घेरकर अद्भुत बना रखा है। इस तरह हौआका गुड्डा बने रहनेमें शरम नहीं लगती तुम्हें ?

नेपथ्यसे—क्या बक रही हो, नन्दिनी !

नन्दिनी—इतने दिनोंसे जिन्हें तुम बराबर डराते आये हो, किसी दिन वे डरनेमें शरमायेंगे। मेरा रंजन अगर यहाँ होता, तो तुम्हारे मुँहपर चुटकियाँ बजाता-हुआ वह मरनेसे भी न डरता।

नेपथ्यसे—तुम्हारा दुःसाहस तो कम नहीं ! अब तक मैंने जो-कुछ तोड़-फोड़कर चकनाचूर किया है उसके पहाड़से ऊँचे ढेरपर खड़ा करके तुम्हें दिखा देनेकी इच्छा होती है। उसके बाद—

नन्दिनी—उसके बाद क्या ?

नेपथ्यसे—उसके बाद मैं अपना आखिरी तोड़ना तोड़ डालना चाहता हूं। अनारके दानोंको मसलकर दसों उंगलियाँ जैसे अपनी सँधोंमेंसे रस निचोड़ती हैं, उसी तरह तुम्हें मैं अपने इन हाथोंसे,—जाओ जाओ, जल्दी भाग जाओ यहाँसे, जल्दी !

नन्दिनी—नहीं, मैं खड़ी रहूंगी यहीं। करो तुम, क्या कर सकते हो, करो। इस तरह बीभत्स होकर गरजो मत।

नेपथ्यसे—इच्छा होती है, अभी तुरत तुम्हें मैं प्रत्यक्ष प्रमाण दिखा दूं कि मैं कैसा अद्भुत निष्ठुर हूं ! मेरे घरमेंसे क्या कभी तुमने आर्तनाद नहीं सुना ?

नन्दिनी—सुना है, वह काहेका आर्तनाद है ?

नेपथ्यसे—सृष्टिकर्ताकी चातुरीको तोड़ा करता हूं मैं। विश्वके मर्मस्थानमें जो-कुछ छिपा हुआ है उसे छीन लेना चाहता हूं, उसीके छिन्न प्राणोंका रोना है वह। पेड़में जो आग है उसे चुरानेके लिए पेड़को जलाना पड़ता है। नन्दिनी, तुम्हारे भीतर भी आग है, रंगीन आग ! किसी दिन जलाकर उसे निकालूंगा, उसके पहले छुटकारा नहीं।

नन्दिनी—क्यों इतने निष्ठुर हो तुम ?

नेपथ्यसे—या-तो मैं प्राप्त करूंगा, या नष्ट करूंगा। जिसे मैं पा नहीं सकता उसपर दया नहीं कर सकता। उसे तोड़ डालना भी खूब एक तरहका पाना ही है।

नन्दिनी—यह क्या, तुम मुट्ठियाँ बाँधकर इस तरह हाथ क्यों निकाल रहे हो ?

नेपथ्यसे—अच्छा, हाथ हटाये लेता हूं, भागो तुम, कबूतरी जैसे बाजकी छाया देखके भागती है, भाग जाओ तुम।

नन्दिनी—अच्छा, जाती हूं, अब तुम्हें गुस्सा न दिलाऊंगी।

नेपथ्यसे—सुनो, सुनो, जाओ मत, सुनो। नन्दिनी ! नन्दिनी !

नन्दिनी—क्या कहते हो, कहो ?

नेपथ्यसे—सामने तुम्हारे चेहरेपर है प्राणोंकी लीला, और पीछे है काले-बालोंकी धारा, मृत्युका निस्तब्ध झरना। मेरे इन हाथोंको उस दिन उसमें डुबकी लगाकर मरनेका आराम मिला था। मौतकी मिठासका और कभी भी मैंने इस तरह स्वाद नहीं पाया। तुम्हारे इन काले बालोंके गुच्छोंके नीचे मुंह ढककर सोनेकी बड़ी-भारी इच्छा होती है। तुम नहीं जानतीं, मैं कितना थका हुआ हूं !

नन्दिनी—तुम क्या कभी सोते नहीं ?

नेपथ्यसे—सोनेमें डर लगता है।

नन्दिनी—मैं तुम्हें अपना पूरा गीत सुना दूं।

करती हूं मैं प्रेम, अरे हाँ, करती हूं मैं प्यार,
इस स्वरमें ही वेणु बजाती, करती हूं जल-थल गुंजार।
नभ-अञ्चलमें किसके उरमें
व्यथा बज रही है उस सुरमें,
किसके मंजुल दृग दिगन्तमें बहा रहे आँसूकी धार।

नेपथ्यसे—बस, बस, रहने दो, अब न गाओ।

नन्दिनी— उस स्वरमें ही सागर-तटपर
सीमा बन्धन खोल, दूर कर,
उठता डोल अतल उर-क्रन्दन।
उस स्वरमें ही, अरे, अकारण
मनमें बजते विस्मृत गायन, विस्मृत हास्य-रुदनके तार।

पागल-भाई, मरा-हुआ मेढ़क छोड़कर राजा तो भाग गया। गीत सुननेमें उसे डर लगता है।

विशु—उसकी छातीके भीतर जो बूढ़ा मेढ़क सब तरहके स्वरोंकी छूतसे बचा-हुआ बैठा है, गीत सुनते ही उसका मरनेको जी चाहता है। इसीसे उसे डर लगता है। पगली, आज तेरे चेहरेपर एक तेज देख रहा हूं, मनमें किस चिन्ताका अरुणोदय हुआ है, मुझे नहीं बतायेगी?

नन्दिनी—मनमें खबर आ पहुंची है, आज जरूर रंजन आयेगा।

विशु—किधरसे आई निश्चित खबर?

नन्दिनी—तो सुनो, बताऊं। मेरी खिड़कीके सामने अनारके पेड़की डालीपर रोज नीलकण्ठ-चिड़िया आकर बैठती है। मैं शाम होते ही ध्रुवताराको प्रणाम करके कहती हूं, उसके पंखोंका एक पर मेरे घरमें आकर पड़े तो समझूंगी कि आज मेरा रंजन अयेगा। आज अबेरे उठते ही देखा कि उत्तरी हवामें एक पर उड़कर मेरे बिस्तरपर आ पड़ा है। यह देखो, मेरी छातीके आँचलमें रखा है।

विशु—अच्छा! इसीसे आज कुंकुमकी टीकी लगाई है!

नन्दिनी—भेंट होनेपर यह पर उसकी पगड़ीमें लगा दूंगी।

विशु—लोग कहते हैं कि नीलकण्ठका पर जययात्राका शुभचिह्न है।

नन्दिनी—रंजनकी जययात्रा मेरे हृदयमेंसे है।

विशु—पगली, अब मैं जाऊं अपने कामपर।

नन्दिनी—नहीं, आज मैं तुम्हें काम नहीं करने दूंगी।

विशु—तो क्या करूं बताओ?

नन्दिनी--गीत गाओ।

विशु--क्या गीत गाऊं ?

नन्दिनी--प्रतीक्षाका गीत।

विशु-- **गीत**

मैं समझती हूं युगोंसे थी उसे बस चाह मेरी।
राहमें मेरी तभी तो बैठ तकता राह मेरी।
आ रहा क्यों याद रह-रह मधुर संध्याका समय वह
जब कि उसपर पड़ गई थी एक चितवन, आह, मेरी।
राहमें बैठा तभीसे ताकता वह राह मेरी।
कौमुदी-संगीतमें वह चाँद रजनीको वरेगा,
एक इंगितसे निशाका तिमिर-घूँघट-पट खुलेगा,
हाँ, उसी सित-यामिनीमें मिलन होगा चाँदनीमें,
आवरण पलमें हटेगा, रंच भी होगी न देरी।
बैठ मेरी राहमें वह ताकता है राह मेरी।

नन्दिनी—पागल भाई, जब तुम गाते हो तो मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारा मुझसे बहुत-कुछ प्राप्य था ; पर मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकी।

विशु—तेरे उस 'कुछ-नहीं' देनेको ही मैं ललाटपर लगाकर अपनी राह चला जाऊँगा। थोड़ा-कुछ देनेके दाममें मैं अपनेको नहीं बेचूँगा। अच्छा, अब तू कहाँ जायगी ?"

नन्दिनी—सड़कके किनारे, जहाँसे रंजन आनेवाला है। वहाँ बैठकर फिर तुम्हारा गीत सुनूँगी। [दोनोंका प्रस्थान

सरदार और चौधरीका प्रवेश

सरदार—नहीं, इस बस्तीमें रंजनको हर्गिज नहीं आने दिया जा सकता।

चौधरी—उसे दूर रखनेके लिए ही तो मैं उसे बज्रगढ़की सुरंगमें काम कराने ले गया था।

सरदार—फिर क्या हुआ ?

चौधरी—किसी तरह काबूमें नहीं आया। बोला, 'हुकुम मानकर काम करनेकी मेरी आदत नहीं।'

सरदार—उसी वक्त आदत डलानेमें हर्ज क्या था ?

चौधरी—कोशिश की गई थी। बड़े चौधरी कोतवालको ले आये थे। लेकिन उसे तो किसी बातका डर ही नहीं ! गलेसे जरा भी कहीं शासनका सुर निकाला नहीं कि वह हाः हाः करके हँस पड़ता है। पूछनेपर कहता है, 'गम्भीरता बेवकूफोंका नकाब है, इसीसे मैं उसे झटका देकर फेंक देना चाहता हूँ।'

सरदार—उसे सुरंगके भीतर मजदूरोंसे क्यों नहीं भिड़ा दिया ?

चौधरी—दिया था, सोचा था कि मजबूर होकर काबूमें आ जायगा। पर उलटा हुआ, मजदूर ही कुछ बेकाबू हो गये। उन्हें भड़का दिया, बोला, 'आज हमारा खुदाई-नाच होगा।'

सरदार—खुदाई-नाच ! इसके मानी ?

चौधरी—रंजनने गाना शुरू कर दिया। मजदूर बोले, 'ढोलक कहाँसे लायें ?' उसने कहा, 'ढोलक न सही, कुदाल तो है।' ताल-तालपर कुदाल पड़ने लगी ; धूम मचा दी। बड़े चौधरीने खुद जाकर कहा, 'काम करनेका यह क्या वाहियात तरीका है !' रंजनने कहा, 'कामकी लगाम खोल दी गई है ; अब उसे हाँकनेकी जरूरत नहीं, दुलकी-नाच नाचता-हुआ खुद-ब-खुद चलेगा वह।'

सरदार—पागल मालूम होता है।

चौधरी—बिलकुल ! मैंने कहा, 'कुदाल उठाओ।' उसने कहा, 'उससे कहीं ज्यादा काम निकलेगा अगर सारंगी ला दो।'

सरदार—तुमलोग तो उसे वज्रगढ़में ले गये थे, वहाँसे वह कुबेरगढ़में कैसे चला आया ?

चौधरी—क्या जानें, साहब ! आखिर साँकलोंसे बाँध दिया गया। पर थोड़ी देर बाद ही देखा कि जैसेका तैसा ! उसे कोई चीज काबू नहीं

कर पाती। और, घड़ी-घड़ीमें वह पोशाक बदल डालता है, चेहरा बदल डालता है। बड़ा ताज्जुब होता है देखकर। कुछ दिन वह यहाँ रह गया तो मजदूर भी सब बेकाबू हो जायँगे।

सरदार—अरे, वो रंजन जा रहा है न, गाना गाता हुआ? टूटी-फूटी सारंगी भी है। इसकी हिम्मत तो देखो, जरा छिपने तककी चेष्टा नहीं!

चौधरी—देखिये न! कब हवालातमेंसे निकल आया, पता ही नहीं। जादू जानता है।

सरदार—जाओ, इसी वक्त पकड़ लो उसे। देखना, इस बस्तीकी नन्दिनीसे हरगिज न मिलने पावे।

चौधरी—देखते-देखते उसका गुट बढ़ता ही चला जा रहा है। किसी दिन हमलोगों तकको न नचाना शुरू कर दे!

छोटे सरदारका प्रवेश

सरदार—कहाँ चले?

छोटा सरदार—रंजनको पकड़ने जा रहा हूँ।

सरदार—तुम क्यों जा रहे हो? मझला सरदार कहाँ है?

छोटा सरदार—रंजनको देखकर वे भूलभुलैयामें पड़ गये हैं, वे उसकी देहसे हाथ ही नहीं लगाना चाहते।

सरदार—सुनो, उसे बाँधनेकी जरूरत नहीं, राजाके महलमें भेज दो।

छोटा सरदार—वो तो राजाकी बात ही नहीं मानना चाहता?

सरदार—उससे कहो, राजाने उसकी नन्दिनीको सेवादासी बना लिया है।

छोटा सरदार—लेकिन राजा अगर—

सरदार—तुम्हें कुछ सोचनेकी जरूरत नहीं। चलो, मैं खुद चलता हूँ।

[सबका प्रस्थान

अध्यापक और पुराणवागीशका प्रवेश

पुराणवागीश—भीतर यह कैसा प्रलय-काण्ड हो रहा है बताओ तो? बड़ा भयङ्कर शब्द है!

अध्यापक—राजाको शायद अपने आपपर गुस्सा आ गया है। इसीसे वह अपना बनाया-हुआ सब-कुछ तोड़-फोड़कर चकनाचूर कर रहा है।

पुराणवागीश—ऐसा लगता है जैसे बड़े-बड़े खम्भे गिराये जा रहे हों।

अध्यापक—सामने जो पहाड़ देख रहे हो, उसके नीचे एक बड़ा-भारी सरोवर था, शंखिनी-नदीका पानी आकर जमता था उसमें। एक दिन उसके बाईं तरफका पत्थरका स्तूप धसक पड़ा तो जमा-हुआ पानी पागलके अट्टहास्यकी तरह खिलखिलाता-हुआ निकलके चला गया। कुछ दिनसे, राजाको देखकर ऐसा लगता है कि उसके संचय-सरोवरके पत्थरपर जोर पड़ रहा है, उसका पेंदा घिसकर कमजोर हो गया है।

पुराणवागीश—वस्तुवागीश, यहाँ तुम मुझे कहाँ ले आये, क्यों लाये?

अध्यापक—संसारमें जो-कुछ जाननेका है, सब जानकर राजा उसे हड़प कर जाना चाहता है। मेरी वस्तुतत्त्व-विद्याको उसने चाटकर खतम कर दिया है। अब वह रह-रहकर गुस्सेमें आकर कहता है, 'तुम्हारी विद्या तो सेंध मार-मारकर एकके बाद एक दीवार ही निकालती जा रही है। प्राण-पुरुषका अन्तःपुर कहाँ है?' इसीसे सोचा कि अब कुछ दिनके लिए उसे पुराणोंमें फँसा दिया जाय तो अच्छा है। मेरा थैला साफ हो गया, अब पुरावृत्तकी गँठकटई चलने दो। सामने देखो, जानते हो, वह कौन जा रही है?

पुराणवागीश—कौन, धानी-रंगकी साड़ी पहने वह लड़की?

अध्यापक—हाँ, वही। पृथ्वीकी प्राण-पूर्ण प्रसन्नताको अपने सर्वांगमें लपेटे-हुए जा रही है, हमारी नन्दिनी है वह। इस यक्षपुरीमें सरदार हैं, चौधरी हैं, खानके मजदूर हैं, हम जैसे पण्डित हैं, कोतवाल हैं, जल्लाद हैं, मुरदाफरोश हैं,—सबमें एक तरहका मेल है। पर यह बिलकुल बेमेल है। चारों तरफ बाजारका शोरगुल है, जैसे सुर-बँधा तम्बूरा हो। किसी-किसी दिन उसके चले-जानेकी हवासे ही मेरा वस्तु-चरचाका जाल टूट जाता है। और फिर उसमेंसे मेरा मनोयोग जंगली पक्षीकी तरह फर्र-से उड़ जाता है।

पुराणवागीश—कहते क्या हो, तुम्हारी पकी हुई हड्डियाँ भी इस तरह आपसमें टकरा जाती हैं?

अध्यापक—असलमें, जाननेके खिंचावसे हृदयका खिंचाव ज्यादा होते ही पाठशालासे भागनेकी जिद सम्हालना मुश्किल हो जाता है।

पुराणवागीश—अब यह तो बताओ, तुम्हारे राजाके साथ कहाँ भेंट होगी ?

अध्यापक—भेंट होना मुश्किल है, उस जालके बाहरसे ही बातचीत हो सकती है।

पुराणवागीश—अच्छा ! जालके बाहरसे ?

अध्यापक—नहीं तो क्या। सो भी घूँघटमेंसे जैसे रसालाप होता है वैसे नहीं, खालिस बातचीत हो सकती है। उसके ग्वालघरकी गायें शायद दूध देना नहीं जानतीं, मक्खन देती हैं।

पुराणवागीश—फालतू बातें छोड़कर असल बात वसूल करना ही तो पंडितोंका काम है।

अध्यापक—मगर विधाता ऐसा नहीं करते। उन्होंने असल चीजकी सृष्टि की है नकलचीजके पालनके लिए। वे इज्जत देते हैं फलकी गुठलीको, और प्यार देते हैं फलके गूदेको।

पुराणवागीश—आजकल देखता हूँ तुम्हारा वस्तुतत्त्व सरपट भागा जा रहा है धानी-रंगकी ओर ! लेकिन, अध्यापक, तुम अपने उस राजाको सहते कैसे हो ?

अध्यापक—सच बताऊँ ? मैं उसे प्यार करता हूँ।

पुराणवागीश—अच्छा !

अध्यापक—तुम जानते नहीं, वह इतना बड़ा है कि उसके दोष उसे नष्ट नहीं कर सकते।

सरदारका प्रवेश

सरदार—कहिये वस्तुवागीशजी, छाँट-छाँटकर इन्हींको लाये क्या ? इनकी तो विद्याका वर्णन सुनते ही हमारे राजा एकदम गरम हो उठे !

अध्यापक—कैसे ?

सरदार—राजा कहते हैं, 'पुराण' नामकी कोई चीज ही नहीं दुनियाँमें, सिर्फ वर्तमान-काल ही आगे बढ़ता जा रहा है।

पुराणवागीश—पुराण अगर नहीं है तो और-कुछ कैसे हो सकता है? पश्चात् ही अगर न हो तो सम्मुख कैसे हो सकता है?

सरदार—राजा कहते हैं, महाकाल नवीनको सामने प्रकाशित करता हुआ चला जा रहा है; पंडित उस बातको दबा जाते हैं, कहते हैं, महाकाल पुरातनको पीठपर लादे लिये जा रहा है।

अध्यापक—नन्दिनीके निविड़ यौवनकी छायावीथिकामें राजाने नवीनके माया-मृगको अकस्मात् देख तो लिया है, पर उसे पकड़ नहीं पा रहे हैं। इसीसे उनका सारा क्रोध आ पड़ा है वस्तुतत्त्वपर।

नन्दिनीका तेजीसे प्रवेश

नन्दिनी—सरदार, सरदार, देखो देखो, क्या है वह? कौन हैं वे?

सरदार—नन्दिनी, तुम्हारी कुन्द-फूलकी माला मैं गहरी रातमें पहनूँगा। जब अन्धकारमें मेरा बाहर-आना अस्पष्ट हो उठेगा तब शायद तुम्हारी फूलकी माला मेरे गलेमें भी खिल सकती है।

नन्दिनी—देखो, जरा आँख खोलके देखो, वहाँ वह कैसा भीषण दृश्य है! प्रेतपुरीका द्वार खुल गया है शायद। प्रहरियोंके साथ वे कौन जा रहे हैं? वो देखो, राजाके महलके पीछेके दरवाजेसे निकले आ रहे हैं। कौन हैं वे?

सरदार—उन्हें हम कहते हैं, 'राजाकी जूठन'।

नन्दिनी—इसके मानी?

सरदार—मानी एक दिन तुम भी समझ जाओगी, आज रहने दो।

नन्दिनी—किन्तु उनके चेहरे तो देखो! क्या वे आदमी हैं? उनमें हड्डी-मांस प्राण क्या कुछ भी बाकी बचा है?

सरदार—सम्भव है कि न बचा हो।

नन्दिनी—किसी दिन था?

सरदार—शायद था।

नन्दिनी—अब गया कहाँ ?

सरदार—वस्तुवागीश, तुम समझा सको तो समझा दो, मैं जाता हूँ।

[प्रस्थान

नन्दिनी—यह क्या, उन छायाओंमें परिचित चेहरे भी दिखाई दे रहे हैं ! हाँ हाँ, जरूर वे अनूप और उपमन्यु हैं। अध्यापक, ये दोनों भाई हमारे पासके गाँवके रहनेवाले हैं। जैसा लम्बा-चौड़ा गठा-हुआ शरीर था इनका, वैसी ही ताकत। सभी इन्हें ताल-तमाल कहा करते थे। आषाढ़की शुक्ला-चतुर्दशीको दोनोंके दोनों नदीमें नाव-दौड़ानेकी होड़में बराबर जीता करते थे। हाय-हाय, आज उनकी ऐसी दशा किसने कर दी ? अरे, शक्लू भी है। तलवारके खेलमें सबसे पहले इसीके गलेमें माला पड़ती थी। (जोरसे पुकारकर) अनूप, शक्लू, इधर देखो, इधर ! मैं हूँ मैं, तुम्हारी नन्दिन, ईशानी-गाँवकी नन्दिन हूँ मैं। सिर उठाकर देखा नहीं, अध्यापक, हमेशाके लिए बेचारोंका सिर नीचा हो गया है। अरे, कंकू भी है ! हाय-हाय-हाय, उस जैसे लड़केको भी ईखकी तरह चूसकर फेंक दिया गया है। बड़ा नाजुक था बेचारा ; जिस घाटपर मैं पानी भरने जाया करती थी, उसके ढालू किनारेपर बैठा रहता था। मैंने शरारत करके उसे बहुत दुःख दिया है। ओ कंकू, इधर देख तो सही आँख उठाके ! हाय रे हाय, मेरे एक इशारेसे जिसका खून नाच उठता था उसने आज मेरी पुकार सुनकर जवाब तक नहीं दिया ! गये, गये, सब गये, हमारे गाँवके सब दीए बुझ गये। अध्यापक, लोहेका क्षय हो गया, काली जंग ही सिर्फ बाकी है। ऐसा क्यों हुआ ?

अध्यापक—नन्दिनी, जिधर सिर्फ राख-ही-राख है, तुम्हारी दृष्टि आज उधर ही पड़ रही है। एक बार शिखाकी तरफ देखो, फिर देखोगी कि उसकी जीभ कैसी चमक रही है !

नन्दिनी—तुम्हारी बात समझमें नहीं आती।

अध्यापक—राजाको तो देखा है ? उसकी मूर्ति देखकर, सुना है, तुम्हारा मन मुग्ध हो गया है ?

नन्दिनी—होगा क्यों नहीं। उसका चेहरा अद्भुत-शक्तिका चेहरा है !

अध्यापक—वह 'अद्भुत' जिसकी जमाको रकम है, यह भीषण-भयानक उसीका खर्च-खाता है। छोटे-छोटे ये जल-जलके खाक होते रहते हैं; और वह बड़ा होकर जलता रहता है दीपशिखाके समान ! यही तत्त्व है बड़े होनेका।

नन्दिनी—यह तो राक्षसका तत्त्व है।

अध्यापक—तत्त्वपर नाराज होना फजूल है। वह अच्छा भी नहीं, बुरा भी नहीं। जो होता है वह होता है, उसके विरुद्ध जाना होनेके विरुद्ध जाना है।

नन्दिनी—यही यदि मनुष्यका होनेका रास्ता हो, तो नहीं चाहती मैं ऐसा होना। मैं उन छायाओंके साथ चली जाऊँगी, मुझे रास्ता दिखा दो।

अध्यापक—रास्ता दिखानेके दिन आयेंगे तब ये ही दिखायेंगे ! उसके पहले रास्ता नामकी कोई बला ही नहीं। देखो न, पुराणवागीश कब धीरेसे सटक गये, कुछ पता ही नहीं। वे सोचते होंगे कि भागके बच जायेंगे। पर जरा-सा आगे बढ़ते ही समझ जायेंगे कि जालका घेरा यहाँसे लेकर योजनों दूर तक असंख्य खूंटियोंसे बँधा-हुआ चला गया है। नन्दिनी, नाराज हो रही हो तुम ? तुम्हारे कपोलपर लाल-कनेरका गुच्छा आज प्रलयकी गोधूलि-सा दिखाई दे रहा है।

नन्दिनी (जालके जंगलेको ढकेलकर)—सुनो, सुनो !

अध्यापक—किसे बुला रही हो तुम ?

नन्दिनी—जालके कुहरेसे ढके-हुए तुम्हारे राजाको।

अध्यापक—भीतरके किवाड़ बन्द हो चुके हैं, तुम्हारी पुकार सुनाई ही नहीं देगी।

नन्दिनी—विशु-पागल, पागल-भाई !

अध्यापक—उसे क्यों बुला रही हो ?

नन्दिनी—अभी तक वह लौटा नहीं। मुझे डर लग रहा है।

अध्यापक—कुछ देर पहले तो देखा था तुम्हारे साथ।

नन्दिनी—सरदारने कहा कि रंजनको पहचनवा देनेके लिए विशुकी पुकार हुई है। मैं साथ जाना चाहती थी, पर जाने नहीं दिया। ओह, यह किसका आर्तनाद है ?

अध्यापक—शायद उस पहलवानका है !

नन्दिनी—कौन है वह ?

अध्यापक—वही जगत्प्रसिद्ध गज्जू, जिसका भाई भजन बड़े दर्पके साथ राजासे कुश्ती लड़ने आया था : फिर उसकी लंगोटीका एक सूत भी कहीं दिखाई नहीं दिया। उसी गुस्सेमें गज्जू आ धमका ताल ठोंककर। मैंने उससे शुरूमें ही कह दिया था कि 'इस राज्यमें सुरंग खोदना चाहो तो आ जाओ। मरते-मरते भी कुछ दिन जिन्दा रह सकते हो। और अगर पौरुष दिखाना हो तो एक क्षण भी टिकना मुश्किल है। यह बड़ी कठिन जगह है।'

नन्दिनी—दिन-रात आदमी पकड़नेके जालकी खबरदारी करके क्या ये सुखी रहते हैं ?

अध्यापक—'सुख'की बात इसमें है ही नहीं, सिर्फ 'रहने'की बात है। इनका वह 'रहना' इतना भयानक-रूपसे बढ़ गया है कि लाखों आदमियोंपर बिना लदे इनका बोझ सम्हल ही नहीं सकता। इसीसे जाल बढ़ता ही जाता है। इन्हें जो रहना ही है, ये रहेंगे ही।

नन्दिनी—रहना ही है ! रहेंगे ही ? मनुष्यकी तरह रहनेके लिए अगर मरना ही पड़े तो उसमें दोष क्या है ?

अध्यापक—फिर वही गुस्सा ? वही लाल-कनेरकी झंकार ? बात खूब मधुर है, फिर भी जो सत्य है सो सत्य ही है। 'रहनेके लिए मरना होगा' कहनेसे सुख मिलता हो, तो कहो। किन्तु रहते वही हैं जो कहते हैं, 'रहनेके लिए मारना होगा।' इसके खिलाफ तुमलोगोंका कहना है कि 'इससे मनुष्यत्वकी हानि होगी' ; पर गुस्सेमें भूल जाती हो कि यही मनुष्यत्व है। शेर शेरको खाकर बड़ा नहीं होता, सिर्फ आदमी ही आदमीको खाकर फूल उठता है।

पहलवानका प्रवेश

नन्दिनी—अरे-रे, देखो देखो, कैसा लड़खड़ाता हुआ आ रहा है बेचारा ! पहलवान, यहीं लेट जाओ तुम। अध्यापक, देखो तो, कहाँ चोट लगी है ?

अध्यापक—बाहरसे चोटके निशान दिखाई नहीं देंगे।

पहलवान—दयामय भगवान, जिन्दगीमें बस एक बार और पा जाऊं जोर, सिर्फ एक दिनके लिए !

अध्यापक—क्यों भाई ?

पहलवान—उस सरदारकी सिर्फ गरदन तोड़नेके लिए।

अध्यापक—सरदारने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

पहलवान—क्या नहीं बिगाड़ा ? सब-कुछ तो उसीकी करतूत है। मैं तो लड़ना नहीं चाहता था। आज वह कहता फिरता है, मेरा ही दोष है !

अध्यापक—क्यों, उसका इसमें क्या स्वार्थ है ?

पहलवान—सारी दुनियाको शक्तिहीन करके ही ये लोग निश्चिन्त हो सकते हैं। दयामय भगवान, इतनी शक्ति दो मुझे, कि किसी दिन उसकी दोनों आँखें उपाड़ सकूं, उसकी जीभ खींचके बाहर निकाल लूं।

नन्दिनी—अब तुम्हें कैसा मालूम हो रहा है, पहलवान ?

पहलवान—मालूम हो रहा है, भीतरसे बिलकुल पोला हो गया हूं। ये लोग कहाँके राक्षस हैं ! जादू जानते हैं। सिर्फ ताकत ही नहीं, भीतरका भरोसा तक चूस लेते हैं। अगर किसी कदर फिर एक बार, हे भगवान, ओफ्, अगर एक बार, सिर्फ एक बार, – तुम्हारी दया हो तो क्या नहीं हो सकता, – सरदारकी छातीमें अगर एक बार दाँत गड़ा सकूं !

नन्दिनी—अध्यापक, इसे पकड़के उठाओ तो जरा, दोनों मिलके इसे अपने घर ले चलें।

अध्यापक—हिम्मत नहीं होती, नन्दिनी। यहाँके नियमानुसार यह अपराध होगा हमलोगोंका।

नन्दिनी—आदमीको मरने देनेमें अपराध नहीं होगा ?

अध्यापक—जिस अपराधका दण्ड देनेवाला कोई नहीं है वह पाप हो

सकता है, किन्तु अपराध नहीं। नन्दिनी, इन-सब मामलोंमेंसे तुम बिलकुल निकल आओ। पेड़ अपनी जड़ोंकी मजबूत जीभसे जमीनका रस चूसा करते हैं, जहाँ उनका यह हरण-शोषणका काम चलता है, वहाँ वे फूल नहीं खिलाते। फूल खिलते हैं ऊपरकी डालियोंपर, आकाशकी तरफ। समझीं, लाल-कनेर, हमारे यहाँ जमीनके नीचे क्या हो रहा है इसकी खबर लेने तुम न आओ। ऊपरकी हवामें तुम कैसे झूला झूलती हो, यही देखनेके लिए हम उत्सुक हैं। लो, सरदार आ रहा है। मैं चल दिया। तुमसे बात करना उसे सहन नहीं होगा।

नन्दिनी—मेरे ऊपर उसे इतना गुस्सा क्यों है?

अध्यापक—अन्दाजसे कह सकता हूं। तुमने भीतर-ही-भीतर उसके मनके तारको खींचना शुरू कर दिया है; सुर जितना ही नहीं मिल रहा है, बेसुर उतना ही कड़ा होकर चीख-चीख उठता है। [प्रस्थान

सरदारका प्रवेश

नन्दिनी—सरदार!

सरदार—नन्दिनी, तुम्हारी वह कुन्द-फूलकी माला मेरे घरमें देखकर गुसाँईजीकी दोनों आँखें,— ये लो, खुद ही आ पहुंचे। प्रणाम प्रभु! वह माला नन्दिनीने दी थी मुझे।

गुसाँईजीका प्रवेश

गुसाँई—अहा-हा, शुभ्र प्राणका दान है भगवानका शुभ्र कुन्द-पुष्प! भोगी-विषयी मनुष्योंके हाथ पड़नेपर भी उसकी शुभ्रता म्लान नहीं होती। इसीमें तो पुण्यकी शक्ति और पापीके परित्राणकी झाँकी मिलती है।

नन्दिनी—गुसाँईजी, इसकी कुछ व्यवस्था कीजिये, बेचारा मरा जा रहा है। इसके जीवनकी घड़ियाँ अब हैं ही कितनी!

गुसाँई—सब तरफसे विचार करके हमारा सरदार जरूर इसे उतना जिलाये रखेगा जितना इसका जीना आवश्यक है। किन्तु वत्से, इन-सब बातोंकी चरचा तुम्हारे मुंहसे श्रुतिकटु मालूम होती है, हम पसन्द नहीं करते।

नन्दिनी—इस राज्यमें आदमीके जीनेकी भी हदें बँधी हुई हैं शायद ?

गुसाँई—हैं क्यों नहीं ! यह पार्थिव जीवन ही सीमाबद्ध है। उसीके हिसाबसे भाग-बँटवारा करना पड़ता है। हमारी श्रेणीके लोगोंपर भगवानने दुःसह दायित्व लाद दिया है, उसे वहन करनेके लिए हमारे हिस्सेमें प्राणोंका सारांश पर्याप्त मात्रामें आना चाहिए। उनलोगोंके कम जीनेसे भी काम चल सकता है, क्योंकि उनका भार घटानेके लिए ही हम जीया करते हैं। यह क्या उनके लिए कम बचाव है ?

नन्दिनी—गुसाँईजी, भगवानने तुमपर इनलोगोंके किस उपकारका भारी भार लाद रखा है ?

गुसाँई—जो प्राण सीमाबद्ध नहीं हैं, उनके भाग-बँटवारेके विषयमें किसीके साथ किसीको लड़ने-झगड़नेकी जरूरत ही नहीं होती। हम गोस्वामीगण उन प्राणोंका ही रास्ता दिखाने आये हैं। इसीमें अगर वे सन्तुष्ट रहें, तभी हम उनके बन्धु हैं।

नन्दिनी—तो क्या यह आदमी अपने सीमाबद्ध प्राण लिये-हुए इसी तरह अधमरा हुआ पड़ा रहेगा ?

गुसाँई—पड़ा क्यों रहेगा ? क्यों सरदार ?

सरदार—ठीक है। पड़ा हम रहने ही क्यों देंगे ? अबसे अपने जोरसे चलनेकी इसे जरूरत ही नहीं रहेगी। हमारे ही जोरसे चला करेगा। क्यों रे गज्जू ?

पहलवान—क्या मालिक ?

गुसाँई—भगवानकी अपार महिमा है, कितनी जल्दी कण्ठमें मिठास आ गई, देखा ! अब तो शायद इसे अपने नाम-कीर्तनके दलमें भी भरती किया जा सकता है।

सरदार—जा, 'ह-त्त' मुहल्लेके चौधरीके घर चला जा, वहीं तेरे रहनेका इन्तजाम कर दिया गया है।

नन्दिनी—यह कैसी बात ! इससे चला कैसे जायगा ?

सरदार—देखो नन्दिनी, आदमियोंको चलाना ही हमारा काम है। हम

जानते हैं, आदमी जहाँ आकर मुंहके बल गिर पड़ता है, जोरसे धक्का देनेमें उसे और-भी थोड़ा-सा चलाया जा सकता है। जाओ गज्जू!

पहलवान—जो हुकुम।

नन्दिनी—पहलवान, मैं भी चलती हूं चौधरीके घर। वहाँ तुम्हें तो कोई देखनेवाला नहीं है।

पहलवान—नहीं नहीं, रहने दीजिये, सरदार नाराज होंगे।

नन्दिनी—मैं सरदारकी नाराजीसे डरती नहीं।

पहलवान—मैं डरता हूं। दुहाई है बहनजी, मेरे संकटको अब और बढ़ाइये नहीं। [प्रस्थान

नन्दिनी—सरदार, जाओ मत, बताते जाओ, तुम मेरे विशु-पागलको कहाँ ले गये हो?

सरदार—मैं ले जानेवाला कौन हूं! हवा ले जाती है बादलोंको, उसे अगर दोष समझती हो तो खबर लो कि हवाको धक्के कौन दे रहा है।

नन्दिनी—यह कैसा सत्यानासी देश है जी! तुम भी क्या आदमी नहीं हो, और जिन्हें चलाते हो वे भी क्या आदमी नहीं? तुमलोग हवा हो, और वे बादल हैं? गुसाँईजी, तुम जरूर जानते हो कि मेरा विशु-पागल कहाँ है?

गुसाँई—मैं निश्चय जानता हूं, कोई कहीं भी रहे, सब अच्छेके लिए है।

नन्दिनी—किसके अच्छेके लिए?

गुसाँई—सो तुम नहीं समझोगी। अरे, छोड़ो छोड़ो, यह मेरी जपकी माला है। लो, टूट गई न! अजी ओ सरदार, इस लड़कीको तुमलोगोंने—

सरदार—मालूम नहीं कैसे इस लड़कीने यहाँके कानूनकी दरारमें घर कर लिया है! स्वयं हमारे राजा—

गुसाँई—अजी, अब तो यह मेरी नामावली तकको फाड़ देगी मालूम होता है। आफत है! मैं चल दिया। [प्रस्थान

नन्दिनी—सरदार, तुम्हें बताना ही पड़ेगा, विशु-पागलको तुमने कहाँ छिपा रखा है?

सरदार—उसे विचारशालामें बुलाया गया है। इससे ज्यादा मैं कुछ भी नहीं कह सकता। छोड़ो छोड़ो, काम है मुझे।

नन्दिनी—मैं नारी हूं इसीलिए क्या तुम मुझसे नहीं डरते? इन्द्र बिजलीके हाथ ही अपना वज्र भेजते हैं। मैं उस वज्रको लाई हूं अपने साथ जो तुम्हारी सरदारीका स्वर्ण-मन्दिर तोड़कर चकनाचूर कर देगा!

सरदार—तो सच बात तुमसे कह जाऊं। विशुको संकटमें डालनेवाली तुम्हीं हो।

नन्दिनी—मैं!

सरदार—हाँ तुम। अब तक कीड़ेकी तरह जमीनमें गड्ढा करके बेचारा चुपचाप चला जा रहा था, उसे मरनेके पंख देकर उड़ना तुम्हींने सिखाया है। समझीं, इन्द्रदेवकी आग! बहुतोंको खींच ले जाओगी तुम सत्यानासकी हद तक। उसके बाद अन्तिम फैसला होगा तुममें और हममें। अब ज्यादा देर नहीं है।

नन्दिनी—ऐसा ही हो! पर एक बात बताते जाओ, रंजनसे मुझे मिलने दोगे?

सरदार—हरगिज नहीं।

नन्दिनी—हरगिज नहीं! अच्छा, देखूंगी तुममें कितना सामर्थ्य है। उसके साथ मेरा मिलन होकर ही रहेगा, आज ही होगा, जरूर होगा। देखूं तुम कैसे रोकते हो! [सरदारका प्रस्थान

नन्दिनी (जालके जंगलेपर धक्का मारकर)—सुनते हो राजा, सुनो! कहाँ है तुम्हारी विचारशाला? तुम्हारा जालका यह दरवाजा आज तोड़ डालूंगी मैं। कौन है वह, किशोर! बता तो मुझे, जानता है तू, अपना विशु कहाँ है?

किशोरका प्रवेश

किशोर—हाँ, नन्दिनी, अभी तुरत उससे तुम्हारी भेंट होगी, अपने मनको तुम ठीक कर रखो। मालूम नहीं कैसे प्रधान प्रहरीको मेरा चेहरा

देखकर दया आ गई और मेरे अनुरोधसे विशुको वह इसी रास्तेसे ले जानेके लिए राजी हो गया !

नन्दिनी—प्रधान प्रहरी ? तो क्या—

किशोर—हाँ, वो देखो, आ रहा है ।

नन्दिनी—यह क्या ! हाथोंमें हथकड़ी ! पागल-भाई, तुम्हें ये लोग इस तरह कहाँ लिये जा रहे हैं ?

बन्दी विश्वनाथको लिये-हुए प्रहरीका प्रवेश

विशु—डरकी कोई बात नहीं, पगली ! इतने दिनों बाद आज मेरी मुक्ति हुई है ।

नन्दिनी—क्या कह रहे हो कुछ समझमें नहीं आ रहा ।

विशु—जब डरते-डरते कदम-कदमपर सम्हलते हुए चलना पड़ता था तब आजाद दिखाई देता था । पर उस आजादीसे बढ़कर शायद ही कोई बन्धन हो !

नन्दिनी—क्या दोष किया है तुमने, जो ये तुम्हें बाँधे लिये जा रहे हैं ?

विशु—इतने दिन बाद आज सच बात कही थी ।

नन्दिनी—इसमें दोष क्या हुआ ?

विशु—कुछ भी नहीं ।

नन्दिनी—तो इस तरह कैद क्यों किये गये ?

विशु—इसमें हर्ज क्या है ? सत्यमें मुझे मुक्ति मिली है ; यह बन्धन उसीका सत्य-साक्षी बना रहेगा ।

नन्दिनी—ये लोग तुम्हें पशुकी तरह बाँधे लिये जा रहे हैं, इनको खुद शरम नहीं आती ? छि छि, ये भी तो आदमी हैं !

विशु—भीतर बड़ा-भारी एक पशु है जो ! मनुष्यके अपमानसे उसका सिर नीचा नहीं होता, बल्कि भीतरके जानवरकी पूंछ फूल-फूलकर हिलती रहती है ।

नन्दिनी—अरे, उनलोगोंने तुम्हें मारा भी है ? यह निशान काहेका है ?

विशु—चाबुक मारे हैं, जिस चाबुकसे वे कुत्तोंको मारते हैं। जिस रस्सीसे चाबुक बनती है उसी रस्सीके सूतसे गुसाँइयोंकी जपकी माला भी बनती है। जब वे भगवानके नामकी माला जपते हैं तब वे इस बातको भूल जाते हैं; पर भगवानको सब पता रहता है।

नन्दिनी—मुझे भी ये इसी तरह तुम्हारे साथ बाँधके ले जायें, भाई मेरे! तुम्हारी मारमेंसे मुझे भी अगर कुछ हिस्सा नहीं मिला तो आजसे मेरे मुंहमें अन्न नहीं रुचेगा।

किशोर—विशु-भइया, मैं अगर कोशिश करूं तो जरूर ये तुम्हारे बदले मुझे ले जा सकते हैं। मुझे आज्ञा दो न, भइया!

विशु—यह तुम्हारा पागलपन होगा, किशोर!

किशोर—सजासे मुझे दुःख नहीं होगा, मेरी उमर कम है, मैं खुशी-खुशी सब सह सकता हूं।

नन्दिनी—नहीं, किशोर, ऐसी बात मत कहो।

किशोर—नन्दिनी, मैं आज कामपर नहीं गया, उन्हें पता तो है ही। मेरे पीछे शिकारी कुत्ते लगा दिये हैं। वे मेरा जो अपमान करेंगे उससे मैं बच जाऊंगा।

विशु—नहीं, किशोर, अभी पकड़ाई देनेसे काम नहीं चलेगा। खतरेका एक काम करना है तुम्हें। रंजन यहाँ आया है, जैसे भी हो उसे निकालना ही है। यह आसान काम नहीं!

किशोर—नन्दिनी, तो अब मैं विदा चाहता हूं। रंजनसे भेंट होनेपर तुम्हारी कौनसी बात कहनी होगी सो बताओ?

नन्दिनी—कुछ नहीं कहना। यह लाल-कनेरका गुच्छा दे देना, इसीसे वह सब बात समझ जायगा। [किशोरका प्रस्थान

विशु—अब रंजनके साथ तुम्हारा मिलन हो!

नन्दिनी—मिलनसे अब मुझे सुख नहीं होगा। यह बात मैं कभी भी नहीं भूल सकती कि तुम्हें मैंने सूने-हाथ विदा किया है। और यह जो बालक किशोर है, भला इसे मैं क्या दे सकी?

विशु—मनमें जो आग जला दी है, उससे उसका भीतरका धन सब प्रकट हो गया है। और क्या चाहिए ? याद है, नीलकण्ठका पंख रंजनकी पगड़ीमें लगा देना है !

नन्दिनी—यह देखो, मौजूद है मेरे आँचलमें।

विशु—पगली, सुन रही है फसल कटनेका गीत ?

नन्दिनी—सुन रही हूं, प्राण रो-रो उठते हैं।

विशु—खेतकी लीला खतम हुई, खेतके मालिक पकी फसलको घर लिये जा रहे हैं। चलो, प्रहरी, अब देर न करो।

गीत

मौसमकी अन्तिम फसल यही है भाई,
काटो औ' धरो समेट इसे तुम सत्वर,
बच जाये जो अग्राह्य, तजो तुम, उसको
मट्टी होने दो मट्टीमें ही मिलकर।

[सबका प्रस्थान

चिकित्सक और सरदारका प्रवेश

चिकित्सक—देख लिया। राजा अपने ही ऊपर आप नाराज हो उठे हैं। यह रोग बाहरका नहीं, मनका है।

सरदार—इसका प्रतिकार क्या है ?

चिकित्सक—खूब जोरका एक धक्का लगना चाहिए। या-तो अन्य किसी राज्यसे युद्ध छिड़ जाय, या फिर प्रजामें जबरदस्त उपद्रव शुरू हो जाय, यही एममात्र प्रतिकार है।

सरदार—यानी और-किसीका नुकसान न करने दिया गया तो वे खुद अपना ही नुकसान करेंगे।

चिकित्सक—ये बड़े आदमी हैं, बड़े बच्चे हैं, खेल खेला करते हैं। एक खेलसे जी ऊब जानेपर तुरत इन्हें दूसरा खेल न सुझाया गया तो ये अपने खिलौनोंको ही तोड़ना शुरू कर देते हैं। लेकिन, तैयार रहो, सरदार, अब ज्यादा देर नहीं है।

सरदार—लक्षण देखकर मैंने पहले ही से तैयारियाँ कर ली हैं। किन्तु हाय-हाय, कैसा दुःख है। हमारी स्वर्णपुरी ऐश्वर्यसे ऐसी भर उठी थी कि कहते नहीं बनता! ऐसी बढ़वारी पहले कभी नहीं हुई, ठीक इसी समय,—अच्छा, तुम जाओ, मुझे सोचने दो। [चिकित्सकका प्रस्थान

चौधरीका प्रवेश

चौधरी—सरदार साहब, मुझे बुलाया था? मैं 'ञ'-मुहल्लेका चौधरी हूँ।

सरदार—तुम्हीं हो तीन-सौ-इक्कीस?

चौधरी—मालिककी कैसी गजबकी याददास्त है! मुझ जैसे नाचीजको भी नहीं भूलते।

सरदार—देशसे मेरी स्त्री आ रही हैं। तुम्हारे मुहल्लेमें डाक बदलेगी, बहुत जल्द उन्हें यहाँ पहुंचा देना।

चौधरी—हमारे मुहल्लेमें गाय-बैलोंमें मरी फैल गई है, मालिक, गाड़ी खींचनेवाले बैलोंका बिलकुल ही अभाव है। खैर, कोई बात नहीं, खानके मजदूरोंको लगा दिया जायगा।

सरदार—कहाँ पहुंचाना है जानते हो न? बगीचेवाले मकानमें, जहाँ सरदारोंका आज खाना-पीना है।

चौधरी—जो आज्ञा, पर एक अर्ज है, जरा ध्यान दीजियेगा। वो जो जो '६९-ङ' है, जिसे लोग विशु-पागल कहते हैं, उसके पागलपनका अब जल्द सुधार होना चाहिए।

सरदार—क्यों, क्या बात है? तुमलोगोंपर कोई जुल्म करता है क्या?

चौधरी—वैसे तो कुछ नहीं, पर हाव-भावसे—

सरदार—सब ठीक है, कोई फिकर नहीं। समझे!

चौधरी—समझ गया। एक बात और है, वो जो '४७-फ' है न, '६९-ङ' से बहुत ज्यादा घुल-मिल रहा है।

सरदार—मुझे खयाल है।

चौधरी—हुजूरका खयाल पक्का है। फिर भी सब तरफ निगाह रखनी पड़ती है, कहीं कोई चूक न हो जाय। देखिये न, एक हमारा '६५' है,

गाँवके नातेसे मेरा फूफा-ससुर लगता है, जो अपनी पसलीकी हड्डियोंसे हुजूरके झाड़बरदारकी खड़ाऊं बनानेको तैयार है, उसकी खैरख्वाही देखकर खुद उसकी स्त्री मारे शरमके सिर झुका लेती है। लेकिन आज तक कभी—

सरदार—उसका नाम बड़े रजिस्टरमें दर्ज हो चुका।

चौधरी—खैर, बेचारेकी इतने दिनोंकी सेवा सार्थक हुई। यह खबर उसे जरा सावधानीके साथ सुनानी है, उसके मिरगीकी बीमारी है न, सुनके कहीं—

सरदार—अच्छा, ठीक है, तुम जाओ जल्दी।

चौधरी—और एक आदमीकी बात कहनी है। वो अगरचे मेरा अपना साला है, लेकिन उसकी मा मर जानेके बादसे मेरी स्त्रीने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है ; फिर भी जब कि मालिकका नमक—

सरदार—उसकी बात कल होगी, तुम जल्दी जाओ।

चौधरी—मझले सरदार साहब आ रहे हैं। उनसे मेरे बारेमें जरा कह दीजियेगा। मुझपर उनकी अच्छी नजर नहीं है। मेरा खयाल है, हुजूर, '६६-ङ'का जब मालिकोंमें उठना-बैठना था तब उसने मेरे नामसे—

सरदार—नहीं नहीं, उसने कभी तुम्हारा नाम भी नहीं लिया।

चौधरी—यही तो उसकी चालाकी है। जो आदमी नामी है उसके नामको दबाकर ही उसे मारा जाता है। दाँव-पेचसे इशारेसे चुगली करना तो अच्छा नहीं लगता। यह बीमारी है हमारे '३३' में। उसके तो और कोई काम ही नहीं, जब-है-तब मालिकोंके कान भरना। डर लगता है, कब किसके नाम क्या बना बैठे, कोई ठीक नहीं उसका। और उसका खुदका ऐसा हाल है कि—

सरदार—आज वक्त नहीं है, तुम जाओ जल्दी।

चौधरी—अच्छा, पालागन। जाता हूं। (फिर लौटकर) एक बात भूल गया, उस मुहल्लेका '८८', थोड़े ही दिन हुए वह तीस रुपयेपर भरती हुआ था, दो साल पूरे भी न हो पाये कि वह ऊपरी आनद समेत कुछ-नहीं तो हजार डेढ़-हजार कमा लेता है। मालिकोंका भोला मन ठहरा, देवताओंकी तरह कोरी स्तुतिसे ही खुश हो जाते हैं। साष्टाङ्ग प्रणामकी बहार देखते ही—

सरदार—आज अब वक्त नहीं रहा, तुम जाओ जल्दी।

चौधरी—मेरे भी तो दया-धर्म है, मैं उसकी रोजी मारनेके लिए नहीं कहता; लेकिन उसे खजानेमें रखना ठीक है या नहीं, सो हुजूर विचार देखियेगा। हमारा विष्णुदत्त उसकी सब खबर जानता है। उसे बुलाकर—

सरदार—आज ही बुलाऊंगा, तुम जाओ।

चौधरी—हुजूर, मेरा मझला लड़का अब लायक हो गया है। मालिक साहबको पालागन करने आया था, तीन दिन आकर लौट गया है, हुजूरके दर्शन नहीं मिले। मनमें बड़ा अफसोस कर रहा था। हुजूरकी पतोहूने अपने हाथसे हुजूरके लिए आमका अचार और—

सरदार—अच्छा, परसों भेज देना, भेंट हो जायगी।

[चौधरीका प्रस्थान

मझले सरदारका प्रवेश

मझला सरदार—बाजेवाले और नाचनेवालियोंको तो बगीचे रवाना कर आया।

सरदार—और, रंजनका क्या किया ?

मझला सरदार—ये सब काम मुझसे नहीं करते बनते। छोटे सरदारने खुद अपने ऊपर भार ले लिया है। अब तक शायद उसे—

सरदार—राजा क्या—

मझला सरदार—राजा जरूर उसे समझ नहीं सके हैं। उन्होंने समझा होगा,—लेकिन राजाको इस तरह धोखेमें रखना मैं तो उचित नहीं समझता।

सरदार—राजाके प्रति कर्तव्य पालनके लिए ही राजाको जरूरतके माफिक धोखेमें रखा जाता है। उसकी जिम्मेदारी मेरी है। अबकी बार लेकिन उस लड़कीको जल्दसे जल्द—

मझला सरदार—नहीं-नहीं, ये सब बातें मुझसे न कहिये। जिस चौधरीपर इसका भार सौंपा गया है वह लायक आदमी है, वह किसी भी गन्दगीसे नहीं डरता।

सरदार—कनीराम गुसाँईको मालूम है रंजनकी बात ?

मझला सरदार—अन्दाजसे मालूम सब है, पर वे साफ-साफ जानना नहीं चाहते ।

सरदार—क्यों ?

मझला सरदार—इस डरसे कि कहीं 'मालूम नहीं' कहनेका रास्ता न बन्द हो जाय ।

सरदार—हो जाय तो क्या है ?

मझला सरदार—समझे नहीं, सरदार ? हमारे तो सिर्फ एक ही चेहरा है, सरदारी चेहरा । किन्तु उनके एक तरफ है गुसाँई, और दूसरी तरफ है सरदार ! नामावली जरा-सी उघड़ते ही उसका भेद खुल जाता है । इसीसे सरदारी-धर्म उन्हें अपने अगोचरमें पालन करना पड़ता है, और इससे नाम जपते वक्त भीतरसे ज्यादा विरोध भी नहीं उठता ।

सरदार—नाम जपना छोड़ ही देता तो क्या था ।

मझला सरदार—पर भीतरसे मन जो उसका धर्मभीरु है, खूनमें चाहे जो भी हो । इसीसे, स्पष्टरूपसे नाम जपने और अस्पष्टरूपसे सरदारी करनेमें उसे आराम मिलता है । वह मौजूद है इसीसे तो हमारे देवता आराममें हैं ; उनका कलंक ढका हुआ है, नहीं तो चेहरा अच्छा नहीं दिखाई देता ।

सरदार—पर मैं देखता हूँ, तुम्हारे खूनके साथ भी सरदारी खूनका मेल नहीं बैठा ।

मझला सरदार—खून सूखनेपर फिर कोई डर ही नहीं रहेगा, अब भी उसकी आशा है । पर तुम्हारे उस '३२१' को आज भी मैं नहीं सह सकता । जिसे दूरसे चिमटेसे छूनेमें भी नफरत होती है, उसे भरी सभामें जब मित्र कहकर छातीसे लगाना पड़ता है, तब किसी तीर्थ-जलमें नहानेके बाद भी अपनेको शुद्ध समझनेकी भीतरसे इच्छा नहीं होती । वो देखो, नन्दिनी आ रही है ।

सरदार—चलो अब, यहाँसे चल दें ।

मझला सरदार—क्यों, डर किस बातका ?

सरदार—तुमपर विश्वास नहीं होता ; मैं जानता हूं, तुम्हारी आँखोंमें नन्दिनीका नशा छा गया है।

मझला सरदार—लेकिन तुम यह नहीं जानते कि तुम्हारी आँखोंमें भी कर्तव्यके रंगके साथ लाल-कनेरका रंग भी थोड़ा-बहुत मिल गया है ; और उसीसे ललाईने इतना भयंकर रूप धारण कर लिया है।

सरदार—सो हो सकता है। मनको बात मन खुद भी नहीं जानता। तुम चले आओ मेरे साथ। [दोनोंका प्रस्थान

नन्दिनीका प्रवेश

नन्दिनी—देखते-देखते सिन्दूरी मेघोंसे आजकी गोधूलि रंगीन हो उठी है। यही क्या हमारे मिलनका रंग है ? मेरी माँगका सिन्दूर मानो सारे आकाशमें फैल गया है। (जंगलेपर हाथ मारती हुई) सुनो, सुनो, सुनो ! दिन-रात मैं यहीं पड़ी रहूंगी जब तक तुम नहीं सुनोगे।

गोसाँईका प्रवेश

गुसाँई—किसे पुकार रही हो ?

नन्दिनी—तुमलोगोंका जो अजगर छिपे-छिपे आदमी निगला करता है उसे।

गुसाँई—राम राम राम, भगवान जब छोटोंको मारते हैं तब उसे वे छोटे मुंह बड़ी बात देकर ही मारते हैं। देखो, नन्दिनी, तुम निश्चित समझना, मैं तुम्हारा मंगल ही चाहता हूं।

नन्दिनी—उससे मेरा मंगल नहीं होगा।

गुसाँई—आओ मेरे मन्दिरमें, तुम्हें नाम सुनाऊंगा।

नन्दिनी—सिर्फ नाम लेकर मैं क्या करूंगी ?

गुसाँई—मनमें शान्ति पाओगी।

नन्दिनी—शान्ति अगर पाऊँ तो धिक्कार है मुझे, धिक्कार है ! मैं इस दरवाजेपर ही धरना दिये बैठी रहूंगी।

गुसाँई—देवताकी अपेक्षा आदमीपर तुम्हारा विश्वास ज्यादा है ?

नन्दिनी—तुम्हारा तो वही ध्वजदण्डका देवता है, वह किसी दिन भी नरम न होगा। किन्तु जालकी ओटमें छिपा-हुआ आदमी क्या हमेशा जालमें ही बन्द रहेगा ? जाओ, जाओ, जाओ। आदमीके प्राणोंको चीर-फाड़कर उन्हें 'नाम' से बहलानेका रोजगार ही है तुम्हारा !

[गुसाँईका प्रस्थान

फागूलाल और चन्द्राका प्रवेश

फागूलाल—विशु तुम्हारे साथ आया था, अब वह कहाँ है ? सच-सच बताओ ?

नन्दिनी—उसे कैद करके ले गये हैं।

चन्द्रा—डाइन, तूने ही उसे पकड़वा दिया है, तू उनलोगोंकी जासूस है !

नन्दिनी—हाय-हाय-हाय, तुम्हारे मुंहसे ऐसी बात निकली कैसे ?

चन्द्रा—नहीं-तो यहाँ तेरा काम क्या है ! तू ही तो सबको फुसला-फुसलाकर फँसाती फिरती है।

फागूलाल—यहाँ सब-कोई सबको सन्देह करते हैं, मगर फिर भी मैं तुमपर विश्वास करता आया हूं। मन-ही-मन मैं तुमको, – खैर जाने दो। लेकिन आज मेरा मन कुछ और ही सोच रहा है।

नन्दिनी—सो हो सकता है, मेरे साथ रहनेसे ही शायद वह आफतमें फँस गया हो। तुम्हारे पास वह ठीक था, उसने खुद भी यही बात कही थी।

चन्द्रा—तो क्यों ले आई उसे फुसलाकर ? सत्यानासिन !

नन्दिनी—उसने कहा था जो, वह मुक्ति चाहता है।

चन्द्रा—अच्छी मुक्ति दी तूने उसे !

नन्दिनी—मैं तो उसकी सब बातें समझ नहीं पाती, चन्द्रा। उसने क्यों मुझसे कहा, संकटके तलेमें डूब जानेमें ही मुक्ति है ! फागूलाल, सुरक्षाकी मारसे जो मुक्ति चाहता है, उसे मैं कैसे बचा सकती हूं ?

चन्द्रा—ये-सब बातें मैं नहीं समझती। अगर उसे वापस न ला सकी

तो तू मरेगी, मरेगी! तेरे इस सुन्दर चेहरेको देखकर मैं भुलावेमें नहीं आनेकी!

फागूलाल—चन्द्रा, झूठमूठको बकवाद करनेसे फायदा? चलो, हम कारीगरोंके मुहल्लेसे दलबल जुटा लायें। जेलखानेको तोड़कर आज हम चकनाचूर कर देंगे।

नन्दिनी—मैं भी चलूंगी तुम्हारे साथ।

फागूलाल—तुम किसलिए जाओगी?

नन्दिनी—तोड़नेके लिए।

चन्द्रा—बस, रहने दो, बहुत तोड़ चुकी हो, मायाविनी, डाइन कहींकी!

गोकुलका प्रवेश

गोकुल—सबसे पहले तो इस डाइनको जलाके मारना है।

चन्द्रा—मारोगे? नहीं, तो-फिर सजा ही क्या हुई? अपने जिस रूपसे यह सबका सत्यानास करती है उस रूपको ही मिटा दो। खुरपेसे जैसे घास छीलते हैं वैसे इसके रूपको ही छील दो।

गोकुल—सो छील सकता हूं। एक बार इस हथौड़ीका नाच—

फागूलाल—खबरदार! इसकी देहसे हाथ लगाया तो—

नन्दिनी—फागूलाल, तुम ठहरो। यह डरपोक है, मुझसे डरता है, इसीसे मुझे मारना चाहता है। मैं इसकी मारसे डरती नहीं। क्या कर सकता है, करे यह, कायर कहींका!

गोकुल—फागूलाल, अब भी तुम्हें होश नहीं आया। सरदारको ही तुम शत्रु समझते हो! समझो, लेकिन जो शत्रु सहज शत्रु है उसकी मैं इज्जत करता हूं, पर तुम्हारी इस मिठमुंही सुन्दरीको—

नन्दिनी—सरदारकी इज्जत करते हो तुम! पैरके तलवे जैसे कीचड़की इज्जत करते हैं! जो गुलाम है वह कभी किसीकी इज्जत कर सकता है!

फागूलाल—गोकुल, अब तुम्हारा पौरुष दिखानेका समय आ गया। लेकिन इस लड़कीपर नहीं। चलो हमारे साथ।

[फागूलाल, चन्द्रा और गोकुलका प्रस्थान

एकसाथ बहुतसे लोगोंका प्रवेश

नन्दिनी—तुमलोग कहाँ जा रहे हो ?

एक आदमी—धुजा-पूजाका नैवेद पहुंचाने जा रहे हैं ।

नन्दिनी—रंजनको देखा है कहीं ?

दूसरा आदमी—चार-पाँच दिन पहले एक बार देखा था, फिर तो नहीं देखा । उनलोगोंसे पूछो, शायद बता सकें ।

नन्दिनी—वो लोग कौन हैं ?

तीसरा आदमी—बगीचेमें आज सरदारोंका खाना-पीना है, सो उनके लिए ये शराब ले जा रहे हैं । [लोगोंका प्रस्थान

फिर कुछ लोगोंका प्रवेश

नन्दिनी—ओ लाल-टोपीवालो, सुनो सुनो, तुमलोगोंने रंजनको देखा है ?

एक आदमी—उस दिन रातको शम्भू चौधरीके घर देखा था ।

नन्दिनी—अब कहाँ है वह ?

दूसरा आदमी—वो जो सरदारनियोंके भोजमें सामान लिये जा रहे हैं, उनसे पूछो । उनके कान बहुत-सी बातें पड़ा करती हैं, जो हमलोग नहीं सुन सकते । [लोगोंका प्रस्थान

तीसरे दलका प्रवेश

नन्दिनी—सुनते हो, रंजनको इनलोगोंने कहाँ छिपा रखा है जानते हो ?

एक आदमी—चुप चुप !

नन्दिनी—तुमलोग जरूर जानते हो, मुझे बताना ही होगा ।

दूसरा—हमारे कानमें जो घुसता है वह मुंहसे नहीं निकलता, इसीसे हम टिके हुए हैं । वो जो हथियार-वथियार लिये आ रहे हैं, उनसे पूछो ।

[तीसरे दलका प्रस्थान

चौथे दलका प्रवेश

नन्दिनी—सुनते हो, जरा ठहर जाओ, बताते जाओ रंजन कहाँ है ?

एक आदमी—सुनो, बताता हूं, लगनका वक्त हो गया । ध्वजा-पूजाके

लिए राजाको आज निकलना ही पड़ेगा। उन्हींसे पूछना। हमलोग शुरूकी बात जानते हैं, आखिरका हाल नहीं जानते। [प्रस्थान

नन्दिनी (जालके अंगलेको झकझोरकर)—सुनते हो ! समय हो गया, दरवाजा खोलो।

नेपथ्यसे—फिर आ गईं बेवक्त परेशान करनेको। अभी चली जाओ तुम, जाओ जल्दी।

नन्दिनी—बाट देखनेका समय नहीं है। तुम्हें सुननी ही होगी मेरी बात।

नेपथ्यसे—क्या कहना है, बाहरसे कहके चली जाओ।

नन्दिनी—बाहरसे बातका सुर तुम्हारे कानों तक नहीं पहुंचता।

नेपथ्यसे—आज ध्वजा-पूजा है, मेरे मनको विक्षिप्त न करो। पूजामें विघ्न आ जायगा। जाओ, जाओ। अभी तुरत भाग जाओ यहाँसे।

नन्दिनी—मेरा डर जाता रहा है। इस तरह तुम मुझे यहाँसे भगा नहीं सकते। मरूंगी, मर जाऊंगी ; पर दरवाजा बगैर खुलाये यहाँसे नहीं हिलूंगी।

नेपथ्यसे—रंजनको चाहती होगी ? सरदारसे कह दिया है, अभी उसे ले आयेगा। पूजामें जाना है मुझे, यात्राके समय इस तरह दरवाजेके आगे न खड़ी रहो। देखो, तुम्हें फिर संकटका सामना करना पड़ेगा !

नन्दिनी—देवताओंके पास समयकी कमी नहीं है, अपनी पूजाके लिए वे जुग-जुग बैठे प्रतीक्षा कर सकते हैं ; पर आदमी नहीं कर सकता। आदमीका दुःख अपनी हद देखना चाहता है। उसके पास समय कम है।

नेपथ्यसे—मैं थका-हुआ हूं, बहुत ज्यादा थका-हुआ हूं। ध्वजा-पूजामें जाकर मैं अवसाद दूर कर आऊंगा। मुझे अब ज्यादा कमजोर न करो। अभी बाधा दोगी तो रथके पहियोंके नीचे पिस जाओगी।

नन्दिनी—मेरी छातीके ऊपरसे तुम्हारा रथ निकल जाने दो, मैं यहाँसे नहीं हिलूंगी।

नेपथ्यसे—नन्दिनी, मैंने तुम्हें प्रश्रय दिया है, इसीसे तुम नहीं डरतीं। लेकिन आज तुम्हें डरना ही होगा !

नन्दिनी--मैं चाहती हूं, सबको जैसे तुम डराते फिरते हो, मुझे भी वैसे ही डराओ। तुम्हारे प्रश्रयको मैं घृणा करती हूं।

नेपथ्यसे--घृणा करती हो? तुम्हारे दम्भको मैं पीसकर चूर-चूर कर डालूंगा। अब तुम्हें अपना परिचय देनेका समय आ गया है।

नन्दिनी--परिचयकी प्रतीक्षामें ही हूं मैं, खोलो दरवाजा। (दरवाजा खुल जाता है) वो क्या! कौन पड़ा है वह? रंजन-जैसा दीख रहा है!

राजा--क्या कहा! रंजन? हरगिज नहीं।

नन्दिनी--हाँ हाँ, वही तो है मेरा रंजन।

राजा--उसने अपना नाम क्यों नहीं बताया? क्यों उसने इस तरह स्पर्धाके साथ मेरा मुकाबला किया?

नन्दिनी--जागो रंजन, मैं आई हूं, तुम्हारी सखी। राजा, यह जागता क्यों नहीं?

राजा--धोखा, धोखा दिया है इनलोगोंने मुझे! सत्यानास हो गया। मेरा अपना यन्त्र मुझे नहीं मान रहा है! बुलाओ, बुलाओ, सरदारको बुला लाओ, बाँधके ले आओ उसे।

नन्दिनी--राजा, रंजनको जगा दो। सब कहते हैं, तुम जादू जानते हो। तुम जगा दो रंजनको।

राजा--मैंने यमराजसे जादू सीखा है, मैं जगा नहीं सकता। जागरणको मिटानेका जादू जानता हूं मैं, जगानेका नहीं।

नन्दिनी--तो फिर मुझे भी ऐसी ही नींद सुला दो। मुझसे सहा नहीं जाता। क्यों तुमने ऐसा सर्वनाश किया?

राजा--मैंने यौवनको मारा है; -- इतने दिनोंसे मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर यौवनको मारता रहा हूं। मरे यौवनका अभिशाप पड़ा है मुझपर।

नन्दिनी--उसने क्या मेरा नाम नहीं लिया था?

राजा--इस तरह लिया था कि मुझसे सहा नहीं गया। अचानक मेरी नस-नसमें आग-सी लग गई।

नन्दिनी (रंजनके प्रति)--वीर मेरे, यह लो, नीलकण्ठका पंख पहना दिया

तुम्हारी पगड़ीमें। आजसे तुम्हारी जययात्रा शुरू हो गई। उस यात्राका वाहन मैं हूं। – अह-ह, हाथमें लाल-कनेरकी मंजरी लिये हुए हो! तब तो किशोरकी तुमसे भेंट हो चुकी है। वह कहाँ गया? कहाँ है वह बालक?

राजा––कौनसा बालक?

नन्दिनी––जिस बालकने रंजनको यह फूलकी मंजरी दी थी?

राजा––वह तो बड़ा अद्‌भुत लड़का था! बालिका जैसा कोमल चेहरा, किन्तु आचरण उद्धत, वचन कठोर। वह बड़े दम्भके साथ चिनौती देकर मुझपर आक्रमण करने आया था।

नन्दिनी––फिर? क्या हुआ उसका? बताओ, क्या हुआ? कहना ही होगा, चुप क्यों हो, बताओ, बताओ जल्दी?

राजा—बुद्‌बुदकी तरह लुप्त हो गया।

नन्दिनी––राजा, अब समय आ गया।

राजा––काहेका समय?

नन्दिनी––अपनी सारी शक्ति लगाकर तुमसे लड़नेका!

राजा––मेरे साथ लड़ाई करोगी तुम! तुम्हें तो मैं इसी क्षण मार सकता हूं।

नन्दिनी––उसके बाद क्षण-क्षणमें मेरा मरना तुम्हें मारता रहेगा! मेरे पास अस्त्र नहीं है, मेरा अस्त्र है मृत्यु!

राजा—तो मेरे पास आओ। साहस है मुझपर विश्वास करनेका? चलो मेरे साथ। आज मुझे तुम अपना साथी बना लो, नन्दिनी!

नन्दिनी—कहाँ जाऊं?

राजा––मेरे विरुद्ध लड़ने, किन्तु मेरे ही हाथपर हाथ रखकर। समझमें नहीं आ रहा? लड़ाई शुरू हो चुकी है। यह मेरी ध्वजा है, मैं तोड़ता हूं इसके दण्डको, और तुम फाड़ डालो इसके केतनको। मेरे ही हाथमें तुम्हारा हाथ आकर मुझे मारेगा, मारने दो, सम्पूर्णरूपसे मारने दो, उसीमें मेरी मुक्ति है।

दलवाले—महाराज, यह क्या किया! यह आपकी कैसी उन्मत्तता!

ध्वजा तोड़ दी ! हमारे देवताकी ध्वजाको, जिसके अजेय शल्यने एक ओर पृथ्वीको और दूसरी ओर स्वर्गको विद्ध कर रखा है, उस महापवित्र ध्वजादण्डको तोड़ डाला ! पूजाके दिन यह कैसा महापातक ! चलो, चलो, सरदारको खबर दें जाकर। [प्रस्थान

राजा—अभी बहुत-कुछ तोड़ना बाकी है। तुम भी तो मेरे साथ चलोगी नन्दिनी, प्रलय-पथमें मेरी दीपशिखा ?

नन्दिनी—हाँ, चलूंगी मैं।

फागूलालका प्रवेश

फागूलाल—विशुको वे छोड़ते ही नहीं ; कहते हैं, नहीं छोड़ेंगे। यह कौन ! ये ही राजा हैं शायद ? डाइन, इनके साथ भी तेरी सलाह चलती है ! विश्वासघातिन !

राजा—क्या हो गया तुमलोगोंको ? क्या करने निकले हो तुमलोग ?

फागूलाल—बन्दीशालाका दरवाजा तोड़ने ! हम मरते मर जायेंगे, पर लौटेंगे नहीं।

राजा—लौटोगे क्यों ! तोड़नेके रास्ते तो मैं भी निकला हूं। यह उसका पहला चिह्न है, मेरी टूटी ध्वजा, मेरी अन्तिम कीर्ति !

फागूलाल—नन्दिनी, ठीक समझमें नहीं आ रहा। हमलोग सरल आदमी हैं, दया करो, हमें धोखा न देना। तुम तो हमारे ही घरकी लड़की हो।

नन्दिनी—फागू-भाई, तुमलोगोंने तो मरनेकी ठान ली है, अब बाकी ही क्या रक्खा है जिसके लिए धोखेका डर है ?

फागूलाल—नन्दिनी, तो तुम भी हमारे साथ-साथ चलो।

नन्दिनी—मैं तो इसीलिए जी रही हूं। फागूलाल, मैंने चाहा था कि रंजन तुम्हारे बीच आ जाय। वो देखो, देखो, आ पहुंचा है मेरा वीर, मृत्युको तुच्छ करके !

फागूलाल—हाय हाय ! सर्वनाश हो गया ! वो क्या रंजन है ? मुरदा-सा चुपचाप पड़ा है !

नन्दिनी—चुपचाप नहीं पड़ा। मृत्युमेंसे मैं उसका अपराजित कण्ठस्वर सुन रही हूं जो! रंजन जी उठेगा, वह हरगिज मर नहीं सकता।

फागूलाल—हाय री नन्दिनी, सुन्दरी मेरी! अब तक क्या तुम इसीलिए हमारे इस अन्धकूप-नरकमें पड़ी-पड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं?

नन्दिनी—रंजन आयेगा, इसीलिए प्रतीक्षा कर रही थी मैं। वह तो आ गया। वह फिर आयेगा, फिरसे मुझे तैयार होना है, वह फिर आयेगा। फागूलाल, चन्द्रा कहाँ है?

फागूलाल—वह गई है गोकुलको साथ लेकर सरदारके पास रोने-धोने। सरदारपर उनलोगोंका अगाध विश्वास है। किन्तु, महाराज, गलत तो नहीं समझा तुमने? हमलोग तुम्हारी ही बन्दीशाला तोड़ने निकले हैं।

राजा—हाँ, मेरी ही बन्दीशाला तोड़ना है। हम तुम दोनोंको मिलकर यह काम करना होगा। अकेले मेरे बूतेका काम नहीं है।

फागूलाल—सरदार खबर पाते ही दौड़ा आयेगा हमें रोकनेके लिए।

राजा—उनलोगोंसे हमारी लड़ाई है, हम लड़ेंगे।

फागूलाल—जीत सकोगे?

राजा—मर तो सकेंगे! इतने दिन-बाद मरनेका अर्थ दिखाई दिया है मुझे! मैं जी गया।

फागूलाल—राजा, सुन रहे हो गर्जन?

राजा—हाँ, देख तो रहा हूँ, सरदार सेना लेकर आ रहा है! इतनी जल्दी कैसे यह सम्भव हुआ? पहलेसे ही तैयारियाँ थीं, सिर्फ मैं ही नहीं जान सका! धोखा दिया है मुझे। मेरी ही शक्तिसे मुझे बाँधा है इनलोगोंने!

फागूलाल—मेरा दल-बल तो अभी नहीं आया, महाराज!

राजा—सरदारने जरूर उन्हें घेर लिया है। अब वे नहीं पहुंच सकते।

नन्दिनी—मनमें थी कि बिशु-पागलको वे मेरे पास पहुंचा देंगे। सो क्या अब नहीं होगा?

राजा—कोई उपाय नहीं। रास्ता रोकनेमें, शत्रुको निरुपाय करनेमें सरदारका कोई मुकाबला नहीं कर सकता।

फागूलाल—तो चलो, नन्दिनी, तुम्हें सुरक्षित जगह रख आऊँ, फिर जो होगा सो देखा जायगा। सरदार तुम्हें देख पायेगा तो जिन्दा नहीं छोड़ेगा।

नन्दिनी—मुझ अकेलीको ही सुरक्षित निर्वासन-दण्ड दोगे? फागूलाल, तुमलोगोंसे तो सरदार ही अच्छा, उसने मेरी जययात्राका रास्ता खोल दिया। सरदार, सरदार! – देखो, उसके भालेकी नोकपर मेरी कुन्द-फूलकी माला लिपटी हुई है। उस मालाको मैं अपनी छातीके रक्तसे रक्तकरवीका रंग दे जाऊँगी। – सरदार! मुझे देख लिया उसने। जय रंजनकी जय!

[तेजीसे प्रस्थान

राजा—नन्दिनी! [प्रस्थान

अध्यापकका प्रवेश

फागूलाल—कहाँ भागे जा रहे हो, अध्यापक?

अध्यापक—किसने तो अभी कहा, राजा इतने दिन बाद चरम प्राणका सन्धान पाकर निकल पड़े हैं! पोथी-पत्रा छोड़कर, मैं भी उनका साथ पानेके लिए निकल पड़ा हूं।

फागूलाल—राजा तो अभी-अभी गया है मरने! उसने नन्दिनीकी पुकार सुन ली!

अध्यापक—उसका जाल टूट गया। नन्दिनी कहाँ है?

फागूलाल—वही तो गई है सबसे पहले। अब वह तुम्हारे हाथ नहीं आ सकती।

अध्यापक—यही तो समय है पकड़ाई देनेका। अब वह धोखा देकर नहीं जा सकती, उसे मैं पकड़ूंगा ही। [प्रस्थान

विशुका प्रवेश

विशु—फागूलाल, नन्दिनी कहाँ है?

फागूलाल—तुम आये कैसे?

विशु—हमारे कारीगरोंने बन्दीशाला तोड़ डाली है। वो देखो, सब जा रहे हैं। कहाँ है वह ?

फागूलाल—वह गई है सबके आगे-आगे।

विशु—कहाँ ?

फागूलाल—आखिरी मुक्ति पाने। विशु, देख रहे हो, वहाँ कौन पड़ा सो रहा है ?

विशु—वो तो रंजन है !

फागूलाल—धूलमें देख रहे हो रक्तकी रेखा ?

विशु—समझ गया, यही है उनके परम-मिलनकी रक्त-राखी ! अब मेरा समय आ गया अकेले महायात्रा करनेका। शायद वह गीत सुनना चाहेगी। मेरी पगली ! चल रे फागू, चल, लड़ाईमें चल।

फागूलाल—जय नन्दिनीकी जय !

विशु—जय नन्दिनीकी जय !

फागूलाल—और, वो देखो, धूलमें लोट रहा है उसका लाल-कनेरका कंकण ! दाहने हाथसे कब खिसक पड़ा है, पगली जान भी न पाई। अपना हाथ वह रीता करके ही चली गई।

विशु—उससे कहा था मैंने, उसके हाथसे कुछ भी नहीं लूंगा। अब लेना पड़ा, उसका अन्तिम दान ! [प्रस्थान

दूरसे गाना सुनाई देता है

आओ आओ आओ, तुमको पौष मास है रहा पुकार,
आओ हर्ष हृदयमें धार।
धूल-भरे आँचलमें आई पकी फसलकी आज बहार।
बलि-बलि जाऊँ बारम्बार।

अकारादिक्रमिक सूची

[भाग १ से १२ तक]